श्रीमान् स्वर्गीय महारावतजी
श्री हरिसिंहजी साहब
(भूतपूर्व काँठल राज्येन्द्र)

राज्यारोहण
वि स १६८५

निर्वाण
वि स १७३२

श्रीमान् हिज हाईनेस महारावतजी
श्री रामसिंहजी साहब बहादुर
(वर्तमान दरबार श्री)

श्रीहरिभूषणम् ।

निर्माता

महाकविर्गङ्गाराम. ।

राजकीय-प्रबन्धत. प्रकाशितम् ।

मुद्रक —

दवे जड़ावलालजी ठाकोर

“ श्री रघुनाथ प्रेस ”

प्रतापगढ स्टट.

मुद्रण-व्यवस्थापक:--

स्व. राव साहिब कोड़ीमलजी

मालू !

सं० १९८८

हि. जा. ६. ८
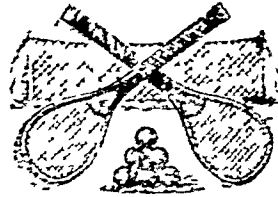
स्टेटकी ओरसे

सम्पादक,

प्रकाशक:--

जगन्नाथ कृष्णलाल शास्त्री

नाम सङ्केत सूची।

संकेत	पूर्ण नाम
ओ॰ कृ॰ हि॰	ओझाजी-कृत हिस्ट्री।
ब॰ लि॰ ख्या॰	बडवाजी लिखित ख्यात।
ब॰ सा॰ स॰ का॰	बडी मारवाड़ी सरकारी कागज।
ओ॰ कृ॰ हि॰ त॰	ओझाजी-कृत हिस्ट्री-तर्कित।
ब॰ लि॰ ख्या॰ त॰	बडवाजी लिखित ख्यात तर्कित।
मु॰ नै॰ ख्या॰	मुहणोत-नैणसी ख्यात।
तु॰ रा॰	तुहफए राजस्थान।
जो॰ लि॰ हि॰	जोरावरमलजी-खानगीवाले लिखित हिस्ट्री
आपा॰ कृ॰ हि॰	आपाजी मनोहर ठाकरे-कृत हिस्ट्री।
वी॰ वि॰	वीर विनोद।
नै॰ ख्या॰	नैणसी-ख्यात।
जो॰ अ॰ कु॰ त॰	जोशी अमृतलालजीसे प्राप्त हुई कुण्डलामे-तर्कित।
गजे॰	गजेटियर, प्रतापगढ़ स्टेट।
तु॰ रा॰ त॰	तुहफए राजस्थानमें वर्णित।
भा॰ रा॰	भारतीय राजस्थान।
ख्या॰ ना॰ शि॰	ख्यातपुरकी नानगीका शिलालेख।
रा॰ प्र॰ म॰	राजप्रशस्ति महाकाव्य।
गो॰ म॰ शि॰	गोवर्द्धन नाथजीके मन्दिरका शिलालेख।
ता॰ प॰	ताम्र पत्र।
पा॰ म॰ शि॰	पा[illegible]के मन्दिरका शिलालेख।

॥ श्रीः ॥

श्रीहरिभूषण महाकाव्यका शुद्धिपत्र :—

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
अलाप	आलाप	१	२५
प्राय	प्राय	२	७
द्र योत्प्रदा	द्रव्योत्प्रदा	४	१७
श्रयुित	श्रीयुत	६	२५
बत्तिस	बत्तीस	७	२३
लाल	लाल,	७	२४
वि ध्य	वि ध्य	१०	६
उठै	उठे	१०	१५
रहै	रहे	१०	१५
स्सम्भ्रम	ससम्भ्रम	१०	१६
अर्थ	अर्थ	१२	६
कॉञ्चन	काञ्चन	१२	२०
वेगेगतवञ्चयन्	वेगैगतेर्वञ्चयन्	१२	२०
किरि	किरि	१२	२१
वचता	वचाता	१२	२४
अर्थ	अर्थ.	१३	२०
अर्ध	अर्थ	१३	५
था	थी	१६	१५
जर्थ	अर्थ	२०	८
अर्थ	अर्थ	२०	१२
क्योंकि	क्योंकि	२१	७
छुत्र	छत्र	२३	११
वंतमाना	वर्तमाना	२७	२१
दुद्धर्व	दुर्द्धर्ष	२८	२
महावितों	महावर्तो	३८	६
अथ	अर्थ	४०	२
राजवेशॉक	राजनशोक	४२	१२
साधिका	नायिका	४३	६
हयथर	हयर्थय	४३	१७
मन्जित	मज्जित	४४	१०

अशुद्धः	शुद्धः	पृष्ठं	पंक्ति
पाशासनी	पाकशासनी	५६	२१
केतू	केतु	५७	२४
रदापुष्पवन्तौ ...	दा पुष्पवन्तौ ...	६४	५
रमणानुगभिः	रमणानुगाभिः ...	६४	५
वांसवडे . . .	वांसवाडे	६४	१३
वांससाडे	वांसवाडे	६४	१५
वैरी वीरोंको घुडसवार जिनमें से इत्यादि ।	घुडसवारवैरीवीरों को कवच जिनके टूट गये हैं ऐसे करने लगे	६५	४
वेषाः	वेशाः	६६	१७
पूग्च	पूर	६६	२७
तलवारे	तलवारें	६७	२
दमामियोंके कहेगये .	ढोलोंके ऊँचे ..	६७	९
दमामियोंके विरुदोंसे ...	ढोलोंकी आवाजों स . .	६८	८
बिरुदपाटसे	ढोलोंकी आवाज से ..	६८	९
सागरान्ताश्चेलुः ...	सागरान्ता चेलुः ...		
अर्थ . .	अर्थः	७९	६
परस्परों	परस्परों	८२	५
सहार्वीधरैः . .	सहोर्वीधरैः	८२	१९
दध्रे . .	दध्रे . . .	८२	२०
छोडनेका	छोडनेका ...	८३	९
मापूर्वे	मापूर्य	८३	२२
रूसमें	रूपमें	८३	२६
रहने न वाला . . .	रहने वाला	८३	२७
प्रतिदिन . ..	प्रतिदिन ..	८८	२
चूडाणि . ..	चूडामणि ..	९१	१९
परयणः	परायण	९३	७
दारद	दारदा	९५	४
तुरङ्गधिरूढ	तुरङ्गाधिरूढः ...	९६	१८
कुराङ्गयताक्षी	तुरङ्गायताक्षी ...	९३	१८
कुरङ्गीक्षणाभि	कुरङ्गीक्षणाभिः .	९६	२४
लसीचत्तवृति	लसच्चित्तवृत्तिः ...	९६	२५

कोई भी प्रिय वस्तु सन्तानोंको समर्पण करनेसे पूर्व पुरुषोंकी आत्मा प्रसन्न होती है, इस नियमके अनुसार श्रीमान्‌का सदा प्रिय चाहनेवाले श्रीमान्‌के पितामह-महानुभावोंकी एवं पितृचरणोंकी वैकुण्ठवासिनी आत्मा श्रीमान्‌के लिये ही समर्पण करनेसे सन्तुष्ट होगी, इस अलौकिक भावनासे प्रेरित होकर इस कोटल-राष्ट्रके अभयदान-पूर्वक सम्पूर्ण मनोरथ देनेवाले कल्पतरु-पल्लवोपम श्रीमान्‌के कोमल करकमलोंमें अपनी यथाशक्ति सेवामें सुमज्जित कर इस कृतिको श्रद्धा-भक्ति-विनय-पूर्वक सादर समर्पित करता हूँ, स्वीकारसे अनुगृहीत करें।

अधिष्ठानम्—
अनाथालय कोट
राजपूताना.

समर्पकः—
जगन्नाथ कृष्णलाल शास्त्री.

श्री
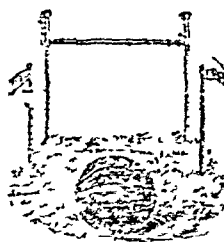
प्रभासम्भावना।

काव्यनाम।

यह काव्य वीरशिरोमणि महारावतजी श्रीहरिसिंहजीके नामसे बनाया गया था, इसलिये इसका नाम **श्रीहरिभूषण** रक्खा है। जैसे **नैषधीय-चरित** काव्यके प्रत्येक सर्गकी समाप्तिमें कवि श्रीहर्षने काव्यके नामका उल्लेख किया है, इसी प्रकार यहां भी कविने प्रत्येक सर्गके अन्तमे काव्यके उपर्युक्त नामका उल्लेख किया है। इस नामका अक्षरार्थ दर्बार साहिब श्रीहरिसिंहजीकी शोभा वृद्धि करनेवाला है।

काव्यका स्वरूप।

यह काव्य वीररसप्रधान है, महारावतजी **श्रीक्षेमसिंहजीसे श्रीहरिसिंहजी** पर्यन्त सूर्यमलोत नरेशोंने अन्य राजाओंके साथ जो २ लडाइयां लडी हैं, उन सभीका वर्णन इसमे हैं। केवल इसके चतुर्थ सर्गमे शृङ्गार-विहारका और अष्टम सर्गमे विद्वान्, मुसाहिब आदिका वर्णन है।

इस काव्यमे ध्वनिप्रधान सर्वोत्तम उच्चकोटिकी कविता चतुर्थ सर्गमें है, इसमे दूसरी श्रेणीकी कविता प्रथम और अष्टम सर्गमे है और इससे भी नीची श्रेणीकी कविता अन्य सर्गोंमे है। अन्य सर्गोंमें भी वर्णनकी शैली तो अच्छी है, परन्तु भाषा-सौन्दर्य साधारण है। नवम सर्गमे कुछ वृत्तगन्धिगद्य है, जिसमे 'भुजङ्गप्रयात' और इसीसे मिलते हुए अन्य छन्दोंके चरण निकलते हैं।

कविने नवम सर्ग पीछेसे बनाकर जोड दिया हो ऐसा मालूम होता है, क्योंकि काव्यके प्रधान-नायक महारावतजी **श्रीहरिसिंहजी**का और इनके आश्रित वर्गका वर्णन अष्टम सर्गमें ही पूर्ण होगया है, इसलिये फिर नवम सर्गके प्रारम्भमे उक्त महारावतजी साहिबका वर्णन करना असङ्गत सिद्ध होता है। इसीसे यह अनुमान किया जाता है कि काव्य बननेके अनन्तर महाराज कुमार प्रतापसिंहजीका जन्म हुआ होगा, इसलिये इनके वर्णनमें कविको एक सर्ग पीछेसे बढानेके लिये विवश होना पड़ा है। मन्त्री, पुरोहित आदि आश्रितोंके वर्णनके अनन्तर महाराज कुमार साहिबका वर्णन करना अयोग्य मालूम होता

था, इसलिये नवम सर्गके प्रारम्भमें महारावतजी साहिबका कुछ वर्णन कविने फिर किया है और बादमें महाराज-कुमार साहिब प्रतापसिंहजीकी कुमारावस्थाका वर्णन किया है।

कविने तो यह काव्य पूर्ण ही बनाया होगा ऐसा स्थूल अनुमान होता है, परन्तु महामहोपाध्याय रायबहादुर **पं० गौरीशङ्करजी** महाराजके प्रयत्नपूर्वक बहुत अन्वेषण करने पर भी इसकी यह एक अपूर्ण प्रति ही मिली है, जो कि नवम सर्गके पञ्चम श्लोकके **'वयोबाल एषो न वृद्धया प्रताप:'** इस एक चरण पर्यन्त है और ओझाजी महाराजके ही अनुग्रहसे ठाकुर साहिब **मदनसिंहजी M. A. L. L. B.** के द्वारा यह मुझे मिली है।

इस काव्यमें व्याकरणकी अशुद्धियां भी कुछ हैं, जैसे:- **'कुशो राण-नृप:'** **'राहूरिव पपातोव्याम्' कुषसमृश्रत-शम्भुरिवार्चितो रुरुचिरे'** इत्यादि; परन्तु कविकी हस्तलिखित प्रति न मिलनेसे शुद्ध पदोंका निश्चय नहीं हो सका है।

इस काव्यको कविने महाकाव्य कहा है, परन्तु इसमें महाकाव्यके लक्षण पूरे नहीं है। धीरोदात्त नायक, सर्ग-विभाग, प्रतिसर्गके अन्तमें छन्दका परिवर्तन, सर्गोंका आठसे अधिक होना इत्यादि कई लक्षण हैं। चन्द्र, वन, शैल आदि कुछ रोचक विषयोंका वर्णन नहीं है।

काव्य-समय।

सभी ऐतिहासिक मतोंको मानने पर भी महारावतजी **श्रीहरिसिंहजी**का दिल्ली पधारनेका समय वि० सं० १६८५ ईस्वी सन् १६२९ से वि० सं० १६९१ ईस्वी सन् १६३५ के भीतर साबित होता है और दिल्ली पधारनेका वर्णन इस काव्यमें किया है, इसलिये काव्य उक्त समयके बाद बना है, यह मानना आवश्यक है। दिल्लीसे वापिस आकर वि० सं० १७०५ ईस्वी सन् १६४९ के वैशाखमें महारावतजी साहिबने अपनी माता श्री**चम्पा कुँवर**की आज्ञाके अनुसार सत्तेकी पालपर देवलियेमें **श्रीगोवर्द्धननाथजी**का मन्दिर बनवा कर पण्डित **विश्वनाथजी**के द्वारा प्रतिष्ठा करवाई थी और पण्डित **विश्वनाथजी**को दीक्षागुरुका पद दिया था, परन्तु कविने महारावतजी साहिब और पण्डित

विश्वनाथजीकी प्रशंसामें इस घटनाका उल्लेख कहीं नहीं किया है, अतः काव्य उक्त सम्वत्से पूर्व बना होगा, यह भी विशेष सम्भव है।

कवि।

इस काव्यके रचयिता कविका नाम **गङ्गाराम** था और पिताका नाम **माधव** भट्ट था, जिसका प्रत्येक सर्गके अन्तिम श्लोकमें **श्रीहर्ष** कविके समान उल्लेख करता है। प्रस्तुत काव्यको यह कवि महाकाव्य कहकर अपने लिये **महाकवि** और **दिक्चक्रविख्यातधी** अर्थात् विश्वका प्रसिद्ध बुद्धिमान्, ऐसे बड़े २ विशेषणोंका प्रयोग करता है, परन्तु सभी सर्गोंकी कविता इस प्रशंसा-का समर्थन नहीं करती है। इस कविने अपनी जातिका उल्लेख कहीं नहीं किया है, । केवल '**उद्यन्निर्मलमेदपाटविलसद्वंशैकचूडामणिश्रीमन्माधव-भट्टसूरितनयः**' इस वंश और पिताके नामके परिचायक पदसे ओझाजी महाराजने अनुमान किया है कि यह भट्ट-मेवाडा जातिका ब्राह्मण होगा। अनुमान इस तरह है कि उक्त चरणके '**मेदपाटविलसद्वंश**' इतने अंशमें कविने अपना वंश मेवाडमें बताया है और '**श्रीमन्माधवभट्ट**' इस अंशमें पिताके नामके साथ 'भट्ट' शब्दका प्रयोग किया है, अत इन दोनों से मिलकर "मेदपाटवंशीय भट्ट" यह अर्थ निकलता है, जो कि "भट्ट मेवाडा" शब्दका तात्पर्य है, परन्तु यदि इसके पोषक अन्य प्रमाण न हों, तब तो यह अनुमान स्थूल है, क्योंकि महारावतजी **श्रीहरिसिंहजी** के समय कई अन्यजातीय भट्ट भी मेवाडसे आये हुए यहां थे। अतएव पाठकोंके सामने मैं भी अपने अनुमानोंको प्रस्तुत करता हू, सम्भव है, इनसे भी कुछ तत्त्व सिद्ध हो।

कविने दीक्षागुरु पण्डित **विश्वनाथजी** 'कीटखेडी' वालोंकी बहुत प्रशंसा इस काव्यमें की है, जो कि त्रिवाडी मेवाडा ब्राह्मण थे, इसलिये सम्भव है, यह भी त्रिवाडी मेवाडा ब्राह्मण हो, क्योंकि जातिप्रेम प्राय मनुष्योंमें होता ही है।

दूसरा अनुमान यह है कि **बाणमाता** जी के भूत-पूर्व पूजक भट्ट **आत्मारामजी** के मकानके खँडहरमें से ७ ताम्रपत्र किसी मनुष्यको देवलियेमें मिले थे, जो उसने खासगी कचहरीमें पेश कर दिये हैं, इन ताम्रपात्रोंमें से एक वि० स० १७०५ वैशाख सुदी १५ गुरुवारका है और यह महारावतजी साह्विब-की माता श्री **चपाकुवरने** हरिद्वारमें **माधव** भट्टजी के लिए भूमिदान किया था,

उसका है, यदि कविके पिताश्री ये ही हों तो सम्भव है, पुण्यके साथ २ इनके पुत्रने जो काव्य बनाया है, इसका प्रतिफल देनेकी बुद्धिसे भी यह भूमिदान किया हो, क्योंकि प्राचीन समयमें कवि चारणों को प्रायः भूमि दिया करते थे और उक्त महारावतजी साहिब भी बडे उदार और श्रद्धालु थे, इसलिये ऐसे काव्यके लिये उन्होंने कुछ भी स्थिर आजीविका नहीं दी हो, यह भी असम्भव है, मुझे प्रायः स्टेटकी बहाल और जप्त सब प्रकारकी भूमिके ताम्रपत्रोंको देखनेका कुछ अवसर मिला है, परन्तु इस ताम्रपत्रके सिवा और किसी भी ताम्रपत्रका घनिष्ठ या साधारण कुछ भी सम्बन्ध इस काव्यके साथ साबित नहीं होता है। यदि मेरा यह अनुमान ठीक निकले तो कवि आमेटा ब्राह्मण था, यह साबित होता है।

महारावतजी साहिबके सभी कृपापात्र आश्रित लोगोंके साथ कविका अच्छा परिचय और प्रेम था, इस कारण और उपर्युक्त जातिविचारका अनुसन्धान करनेसे भी कवि स्वदेशीय था, ऐसा प्रमाणित होता है।

परिमार्जन।

यह काव्य प्रशंसाकी दृष्टिसे लिखा गया है, ऐतिहासिक दृष्टिसे नहीं लिखा गया है, इसलिये इसमें कांठलेन्द्रोंके जन्म-समय और राज्यरोहण-समयका कहीं भी उल्लेख नहीं है।

भूतपूर्व काँठलेन्द्रोंके समयका तो कदाचित् मालूम न होनेसे उल्लेख नहीं किया होगा, परन्तु कविके समयके वर्तमान महारावतजी **श्रीहरिसिंहजीके** जन्म-समय और राज्यारोहण-समयका भी उल्लेख नहीं है। इसके अतिरिक्त कविने अपने काव्य-नायक काँठलेन्द्रोंकी प्रशंसाके लिये कई सत्य घटनाएँ भी बदल दी हैं, ये ऐतिहासिक दृष्टिसे खटकती हैं, और जहां एकके बाद दूसरे काका या भाई गद्दीनशीन हुए हैं, वहां इस कविने बीचकी पुश्तें गायब कर दी हैं। अत एव श्रीमान् बडे हुजूर **श्री १०८ श्री सर् रघुनाथसिंहजी साहिब K. C. I. E** की आज्ञाके अनुसार एकत्रित की गई इतिहास-सामग्री के आधार पर इस काव्यमें वर्णित काँठलेन्द्रोंके विषयमें शुद्ध अतिसंक्षिप्त विवरण पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करता हूं, जो कि पाठकोंके लिये घटनाओंकी वास्तविकता प्रदर्शन करनेमें उपयुक्त होगा।

राजधानी बडी सादडी थी न कि देवलिया । मु. नै. ख्या. ।

वि. सं. १५८८ ई. स. १५३२ में महाराणा संग्रामसिंहका स्वर्गवास होनेपर बडी सादडीका त्यागकर ग्यासपुर प्रान्तमें या माण्डूकी तरफ जाकर रहे । ओ. कृ. हि. । तु. रा. ।

वि. सं. १५९१ ई. स. १५३४ के माघ शुक्ल ४ भृगुवारके दिन चित्तोड-की पाडल पोलके पास **बहादुरशाह** के साथ बडी वीरतासे युद्ध कर काम आये । ब. लि. ख्या. । ओ. कृ. हि.

उपर्युक्त युद्धका वर्णन इस काव्यमें अच्छा है, परन्तु कविने **बहादुरशाह** पर विजय प्राप्त करनेका उल्लेख किया है । संभव है, **बहादुरशाह**के साथ जो इससे पूर्व एक युद्ध हुआ था, उसका अवधान कविको रह गया हो ।

महारावतजी श्रीरावसिंहजी ।

वि. सं. १५९१ ई. स. १५३४ में आपका राज्यारोहण हुआ । चित्तोड हस्तगत करनेके बाद महाराणा विक्रमादित्य वून्दीसे नहीं आये थे, तब तक आपके पिताश्रीको दिये गये महाराणाके प्रतिनिधि-पद पर आप चित्तौडमे रहे थे । जो. लि. हि. । आपा कृ. हि. । बादमें आपकी राजधानी बडी सादडी रही थी । वी. वि. । नै. ख्या. ।

वि. सं. १५९४ ई. स. १५३७ में आपके पास बडी सादडीमें बनवीरके डरसे **उदयसिंह** को लेकर धाय पन्ना गई थी, जिसके लिये खान, पान, घोड़ा, आदमीका प्रबन्ध डूंगरपुर तक आपने कर दिया था । ओ. कृ. हि. । वी. वि. ।

वि. सं. १६०९ ई. स. १५५३ से पूर्व किसी वर्ष आपका स्वर्गवास हुआ था । यह बडी सादडीमे नहीं, किन्तु बडी सादडी और ग्यासपुरके बीचके पहाडों मे कहीं हुआ था । तु. रा., ब. लि. ख्या. ।

यद्यपि पीछेकी अवस्थामें पहाडोंमें रहते हुए आपने मेवाड़ वालोंके साथ छोटी २ कई लड़ाइयाँ लड़ी थीं, परन्तु किसी प्रसिद्ध युद्धके न होनेसे कविने केवल आपके विद्यानुराग और दानकी प्रशंसा की है ।

महारावतजी श्रीबीकाजी।

वि. स १५८२ ई स १५२६ मे कार्तिक शुक्ल अष्टमीको आपका जन्म हुआ था। जो. अ कु त.।

वि. स १६०९ ई स. १५५३ मे पूर्व किसी वर्ष आप राज्यारूढ हुए थे और आपकी राजधानी प्रारम्भमें बडी सादडी थी। गजे, नै रया।

वि स १६१७ ई स १५६१ फागुन शु० १५ के दिन मेवाको (मेरोंको) परास्त कर देवलियेकी मूल भूमि पर आपन अधिकार कर लिया और देवलिया बसाया। गजे, ब. लि रया।

इस काव्यमे जो डुगरपुर वाले आसकर्णके साथ हुए युद्धका वर्णन है, इसका समय वि स १६१७ ई स १५६१ के अनन्तर और वि सं १६३३ ई १५७७ तक मध्यमे कोई वर्ष है। गजे तु रा त। वि स १६३३ ई स १५७७में आपका स्वर्गवास हुआ। ब लि रया।

महारावतजी श्रीतेजसिंहजी।

वि. स १५३३ ई स १५७७ में आप राज्यारूढ हुए।

वि. स १६३५ ई स १५८९ मे तेजसागर तालाब देवलियामे बनवाया। धी वि।

वि स १६५० ई स १५९४ में आपका स्वर्गवास हुआ। ता प।

आपके वीरता और दानकी कविने अच्छी प्रशसा की है, परन्तु किसी युद्धका उल्लेख नहीं है।

महारावतजी श्रीभानुसिंहजी।

वि सं १६५० ई स १५९४ में आप राज्यारूढ हुए।

वि स १६६० ई स १६०४ में शक्तावत योधसिंहके साथ धीतामेडाके पास आपने युद्ध किया था और इसका वर्णन प्रस्तुत काव्यमें है। वर्णनका और समय अश ठीक है, परन्तु आपके छोटे भाई सिंहाजीको आपके

भतीजे मानकर उनको राज्यारूढ बतलाया है और उनके समयमें उनकी आज्ञासे आप युद्धके लिये गये थे, ऐसा कहा है। काव्य भी प्राचीन है, ऐतिहासिकोंको और अधिक अनुसन्धान करना चाहिये। यदि किसी भी कॉटलेन्द्रके पराजयका वर्णन नहीं करना चाहिये, इस आशयसे कविने सत्य छिपा दिया हो तो असम्भव नहीं है।

उपर्युक्त युद्धमें ही चीताखेडेके एक वटवृक्षके पास आप काम आये और आपके शवका संस्कार जीरणके तालावकी पाल पर हुआ। वी. वि. भा. ग.।

महारावतजी श्रीसिंहजी।

वि. सं. १६६० ई. सं. १६०४ में आप राज्यारूढ हुए। तु. रा.।

वि. सं. १६८५ ई. स. १६२९ में आपका स्वर्गवास हुआ था। ग्या. घा. शि.। रा प्र. म.।

महारावतजी श्रीयशवन्तसिंहजी।

वि. सं. १६८५ ई. सं. १६२९ में राज्यारूढ हुए थे।

उपर्युक्त वर्षमें ही सेनाकी सहायता देकर मन्दसोरके सूबे जानिसारखाँके द्वारा मोडीके थाने पर रहनेवाले शक्तावत **जसवन्तसिंह**को मरवाया। नै. ख्या.।

उपर्युक्त घटनासे अप्रसन्न होकर महाराणा **जगत्सिंह**ने आपको उदयपुर निमन्त्रित किया और सेना-सहित राठोड **रामसिंह**को मुकाबलेके लिये रात्रिमें भेजा, जिसके साथ ससैन्य युद्ध कर आप और आपके बडे महाराज-कुमार **महासिंहजी** दोनो ही चम्पाबागके पास काम आये। इस युद्धका वर्णन प्रस्तुत काव्यमें बहुत अच्छा किया है, परन्तु राठोड **रामसिंह**के भी हारनेका वर्णन है और महारावतजी साहिब वहीं काम आये ऐसा स्पष्ट उल्लेख नहीं है। साथ ही महाराणाके अप्रसन्न होनेका कारण मोडीके थानेकी उपर्युक्त घटना नहीं, किन्तु किसी सर्दारने सभामें महाराणाके सामने आपके नजराना कर दिया, यह बताया है। अप्रसन्नताका कारण जो कुछ हो, परन्तु महारावतजी साहिब अपने पुत्र सहित चम्पा-बागके पास उपर्युक्त युद्धमें ही काम आये, इतना तो निश्चित है।

इस युद्धके समय निर्णयमें निम्नलिखित मत भेद हैः-

वि० स० १६७९ ई० स० १६२३ में युद्ध हुआ। आर्को० हि०।

वि० स० १६८५ ई० स० १६२९ में हुआ। रा० प्र० म०, ओ कृ० हि०।

वि० स० १६८८ ई० स० १६३२ में हुआ। व० लि० ख्या०।

वि० स० १६८९ ई० स० १६३३ मे हुआ। तु० रा०।

वि० स० १६९० ई० स० १६३४ में हुआ। वी० वि०।

महारावतजी श्रीहरिसिंहजी।

वि० स० १६८५ ई० स० १६२९ के अन्तमें आप राज्यसिंहासन पर आरूढ हुए थे। इसी वर्ष राठौड **रामसिंह**के द्वारा देवलियाके लूटे जाने पर आप धमोतरके ठाकुर **गोपालजी** और इनके पुत्र **जोधाजी** इन दोनोंको साथ लेकर **शाहजहा**के पास दिल्ली गये थे। वहां बादशाहने सात हजारी मन्सब देकर आपका बहुत बडा संमान किया था, जो संमान **औरङ्गजेब**की यथेष्ठ सहायता करने पर भी महाराणा **राजसिंह**को और कृष्णगढ नरेशके समान प्रेमपात्रोंको भी नहीं मिला था। दिल्लीसे वापिस आकर बादशाहकी दी हुई सहायतासे आपने मेवाड़ वालोंका अधिकार हटाकर काठलकी भूमि फिर अपने अधिकारमें करली थी।

वि० सं० १७१६ ई० स० १६५९ में महाराणा **राजसिंह**ने अपने प्रधान **फतहचन्द**को सेना-सहित भेजकर बसाड और ग्यासपुरके दोनों पर्गने आपसे छीन लिये थे, परन्तु महाराणा **राजसिंह**ने दूसरे ही वर्ष बादशाहकी इच्छाके विरुद्ध कृष्णगढमें **चारुमती**के साथ विवाह कर लिया था, जिसकी सूचना देने पर बादशाहने उक्त दोनों पर्गने महाराणासे छीन कर फिर आपको दे दिये थे। इसके अतिरिक्त मेवनाका एक नया प्रान्त और आपने अपने अधिकारमें कर लिया था। इस प्रकार महाराणा **राजसिंह**से साथ आजीवन खटपटा रहने पर भी आपने अपने राज्यकी अभिवृद्धि ही की। अपने धर्मको शुद्ध रखते हुए बादशाहसे इतनी बडी कृपा और सम्मान प्राप्त करनेवालोंमें आप प्रथम हुए हैं। जैसे आप साहसी और वीर थे, वैसे ही आप

स्वयं विद्वान्, विद्यानुरागी और गुणग्राहक थे, जिसका परिचय प्रस्तुत काव्यके पाठसे और अग्रिम विवरणसे पाठकोंको होगा।

कविने आपकी और प्रशंसा तो बहुत की है, परन्तु वीरोचित घटनाओंका उल्लेख कम किया है, केवल मालवनाथको आपकी वीरताके सामने गर्वत्याग करनेका उपदेश दिया है।

ताम्रपत्रोंके अनुसार वि० सं० १७३२ के ज्येष्ठमें आपका स्वर्गवास हुआ था, यह प्रमाणित होता है। इसमें **भोगीदासजी**की बावड़ीका शिलालेख स्थूल दृष्टिसे देखने वालोंको विरुद्ध मालूम होगा, क्योंकि उसमें वि० सं० १७३१ फाल्गुन शुक्ल ७ रविवारका उल्लेख करके नीचे "**रावत श्रीप्रतापसिंहजी-विजयराज्ये**" ऐसा लिखा है, परन्तु ठीक विचार किया जाय तो उपर्युक्त संवत् बावड़ीका काम पूर्ण होनेका है, शिलालेख लगानेका नहीं है, शिलालेख बादमें लगाया गया है और उस समय **प्रतापसिंहजी**का विजय-राज्य प्रारंभ होजानेसे नीचे उसका उल्लेख कर दिया गया है। यदि ऐसा न होता तो महा-रावतजी **प्रतापसिंहजी**का नाम ऊपर होता, जैसा कि **श्रीगोवर्द्धन-नाथजी**-के मन्दिरके शिलालेखमें उस समयमें वर्तमान महारावतजी साहिबका नाम है और बादमें बनवाने खुदवाने आदिका विवरण है।

माजी साहिबा श्रीचम्पाकुँअर।

आप चौहाण **ख्यानजी**की पुत्री थीं, सौभाग्य अल्प रहनेसे आपने अपने जीवनका बहुत अधिक भाग धर्मकार्योंमें ही व्यतीत किया था। देवलियामें **श्रीगोवर्द्धननाथजी**का मन्दिर आपका बनवाया हुआ है, मन्दिरके साथ उसीके पासकी बावड़ी और बगीचा ये दोनों बनवा कर भेट किये थे। प्रतिष्ठाके समय तुलादान, एक ग्राम दान, एक सहस्र गोदान, एक सहस्र स्त्री-पुरुषोंको वस्त्रदान, दश महादान, और एक लक्ष ब्राह्मणोंको भोजन करवाया था। इसके अतिरिक्त आपने हरिद्वार आदि तीर्थोंकी यात्रा भी की थी। गो०म०शि०।ता०प०।

प्रस्तुत काव्यमें आपका स्पष्ट नामोल्लेख न करते हुए कविने धार्मिक-भावना-मय-वर्णन किया है।

महाराज-कुमार श्रीप्रतापसिंहजी ।

आपके वर्णनके प्रारम्भमें ही कविका काव्य लँगडा होगया है, केवल आपके शिकार खेलनेका वर्णन किया है, जन्म आपका किस संवत्में हुआ, निश्चित नहीं है। इतना अनुमान होता है कि काव्यका अन्तिम सर्ग बननेके समय आपकी अवस्था पन्द्रह वर्षके करीब थी। ह भू म।

आपके पिताका स्वर्गवास और आपका राज्याभिषेक वि सं १७३७ ई सं. १६७६ के उष्ण कालमें हुआ था। आपके समकालीन महाराणा जयसिंहके विलासप्रिय होनेमें राज्यसमय आपका खटपटसे रहित और सुखशान्तिमय रहा था। अत एव वि स १७५४ ई स १६९८ मे प्रतापगढ जैसे शहर बसानेका सुयोग आपको मिला था। इसके अतिरिक्त आपने अपने राज्यके दूसरे ही वर्ष वि स १७३३ माघ सुदि १५ के दिन पाटण्याका नाम प्रतापपुरा रख कर प० जयदेवजी महेता को दानमें दिया था। वि म १७६१ ई. स १७०५ के ज्येष्ठमें अपने नामसे प्रतापबावडी देवलियामें घाटीके नीचे बनवा कर उसकी प्रतिष्ठा करवाई थी। इस प्रकार आप अपने नाम और कीर्तिको सर्वदाके लिये स्थिर कर गये हैं।

आपके छ महारानियां थी, जिनमें बडी महारानी माहिना पाटमदेवने देवलियामें घाटीके नीचे अपने नामसे वि० सं० १७५७ के आस पास बावडी बनवाई थी, जो प्रताप बावडीसे कुछ दूर पर है।

आपके पाटण्याके उपर्युक्त दानपत्रमें उस समयमे वर्तमान सभी राजपरिवार कर्मचारी और विद्वानोंके नामोंका उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है :—

माजी साहिबा श्रीमनभावतीजी, महारानिया पाटमदेव, धर्मकुँअर इत्यादि, महाराज कुमार पृथ्वीसिंह, कीर्तिसिंह, काकाजी मानसिंहजी, धमोतर वालोंके पूर्व पुरुष काकाजी भोगीदासजी जिनका नाम बडवाने जोगीदासजी लिखा है, इनके पुत्र भाई बख्त कर्णजी, कानड वालोंके पूर्व पुरुष भा' कुशलसिंहजी, सालमगढ वालोंके पूर्व पुरुष भाई अमरसिंहजी, अचलावदा वालोंके पूर्व पुरुष भाई माधवसिंहजी, रायपुरवालोंके पूर्व पुरुष, ठाकर दलपतजी, कन्यापुरा वालोंके पूर्व पुरुष ठाकुर

रणछोड़जी, वरड़िया वालोंके पूर्व पुरुष ठाकुर **मनोहरदासजी, रूपसिंहजी तुलसीदासजी**, पाडलिया **मन्नालालजी** साहिबके पूर्व पुरुष मन्त्री **वर्द्धमानजी**, वर्णावत **उदेभाणजी, गरीबदासजी**, कीटखेड़ी वाले दीक्षागुरु पं० **विश्वनाथजी**।

वड़ी अवस्थामें यह आपके गुणोंका विकास इतना अच्छा हुआ था कि महामहोपाध्याय कविराजा **श्यामलदासजी** जैसे सार्वभौम विद्वानोंने भी आपके व्यवहार-चातुर्य और विद्यानुरागकी मुक्तकण्ठ प्रशंसा की है।

कविने राज-परिवारके अतिरिक्त इन निम्न-लिखित कृपा-संमान-प्रेमपात्र आश्रितोंका प्रस्तुत काव्यमें वर्णन किया है:—

पुरोहित कल्याणदासजी।

कविने आश्रित-वर्गमें सबसे प्रथम आपका ही वर्णन किया है, आप बड़े पुरोहितजीके पूर्व पुरुष कश्यपगोत्रीय आमेटा ब्राह्मण थे। कविने आपके तन्त्रशास्त्र-विषयक और धर्मशास्त्रविषयक ज्ञानकी प्रशंसा की है, पुरोहिताईके अतिरिक्त ताम्रपत्र खोदनेका काम भी आपके द्वारा होता था।

पौराणिक गोदा भट्ट।

वर्णनसे मालूम होता है कि ये गाकर हरिकथाके ढंग पर कथा कहते थे और शरीर इनका विशेष मोटा था।

सभा-पण्डित विश्वनाथजी।

ये त्रिवाडी मेवाडा ब्राह्मण थे। वि० सं० १७०५ ई० स० १६४८ के वैशाखमें देवलियामें सत्तेकी पाल पर **श्रीगोवर्द्धननाथजी**के मन्दिरकी जो प्रतिष्ठा हुई थी, उसमें ये आचार्य थे और इसी समय इनको दीक्षागुरुका पद दिया गया था। वर्णनसे मालूम होता है कि साहित्य, न्याय, वेदान्त आदि कई शास्त्रोंके विद्वान् थे।

कोठारी केशूजी (केशवजी)।

ये सर्कारमें ट्रेज़रार थे और घरके भी बड़े धनी थे।

राज्यमंत्री वर्षा साहजी।

ये मानेश्वर गोत्रीय हुम्बड जातिके महाजन थे। इनका अनटक मवनी था। वि० स० १५७८ ई० स० १६६४ तक आप वर्तमान थे। आपके पौत्र **दयालजीने** देवलियामें भगवान् **पार्श्वनाथजीके** वर्तमान मन्दिरकी प्रतिष्ठा करवाई थी। पा० म० शि० । रविने आपकी क्षमा, चातुरी और राजनीतिकी बड़ी प्रशंसा की है।

पोधाजी और कलूजी।

ये दोनों खिदमतगार थे और महारावतजी साहिब सुन्दर चौकम विराज कर गाना सुनते थे, उस समय ये चमर डुलाया करते थे। महारावतजी साहिब-का इन पर बड़ा प्रेम था। कलूकी बहूके निमित्त महारावतजी साहिबने अपनी ओरसे वि० स० १७२१ माघ शुक्ल ११ के दिन भूमिदान दिया था। ता० प०।

सम्पादकका वक्तव्य।

पूर्वोक्त महानुभावोंका जिस क्रमसे कविने वर्णन किया है, उसी क्रमसे मैंने किया है, क्योंकि कविके विवेक, भाव और उस समयकी सम्मान-दृष्टिका इससे पता लगता है।

पूर्वोक्त महारावतजी साहिबने **विद्याराय प० महेता जयदेवजीका** भी बहुत बडा सम्मान किया था, जिसमें इनको '**विद्याराय**' की उपाधि दी थी। इसका उल्लेख आपके महाराज कुमार साहिबने अपने दिये हुए पाटण्येके दानपत्रमें किया है, परन्तु यह घटना काव्य बननेके बाद हुई है, इसलिये कवि इसका उल्लेख नहीं कर सका है।

इस काव्यका रूप भूतपूर्व अनेक अबोध लेखकोंकी प्रमादवशसे बहुत बिगड़ गया है, इसलिये केवल एक पुस्तकके आधार पर इसका वास्तविक रूप-में आना कठिन है, फिर भी यथाशक्ति प्रयत्न किया गया है और मेरे बुद्धिदोषने अपनी शरणमें जिन दोषोंको स्थान दे दिया है उनको जाननेके लिये साथ एक शुद्धिपत्र लगा दिया है।

काव्यनायकोंसे जिनका वर्णन कहांसे प्रारम्भ होता है, यह जाननेके लिये एक विषयसूची भी साथ रक्खी है।

इस काव्यके भावोंसे सर्व साधारणको आनन्दका लाभ होना चाहिये, इस आशयसे प्रत्येक श्लोकका उसीके नीचे हिन्दी अनुवाद दिया है और साहित्य-रसिकोंकी प्रीतिके लिये अनुवादमें अलङ्कारोका सन्निवेश भी किया है। एवं सर्गमे आनेवाले छन्दका नाम प्रत्येक सर्गके प्रारम्भमे दिखा दिया है।

काव्यके प्रधान-नायक महारावतजी **श्रीहरिसिंहजी** के चित्रका सन्निवेश इस काव्यके साथ नही होसका है, यह वहुत न्यूनता है, परन्तु क्या किया जाय, यहां सर्कारमे जितने प्राचीन चित्र है, उनके साथ चित्रनायकोंके नाम नहीं है, इसलिये पहिचान नहीं हो सकती है, विवश है।

इस प्रकार यथाशक्ति आवश्यक विषयोंसे विभूषित किये गये इस काव्यको लेकर जो मै पाठकोंकी सेवामें उपस्थित हुआ हूं, इसका सम्पूर्ण श्रेय संस्कृत-रसिक परमगुणग्राही वैकुण्ठवासी वड़े हुजूर **श्रीमान् श्री १०८ श्री सर् रघुनाथसिंहजी** महोदय **K. C. I. E.** को है। आपका ही असीम अनुग्रह निमित्तमात्रके लिये मुझसे कुछ सेवा स्वीकार कर इस काव्यको पल्लवित, पुष्पित, और फलित रूपमे लाया है, इसलिये इस काव्यके प्रारम्भमे सन्निवेशित कीगई आपकी शान्तिमयी चित्र मूर्तिके द्वारा मै अनेकशः हार्दिक धन्यवादोंको और आभार-स्वीकारको आपकी वैकुण्ठवासिनी आनन्दमूर्तिके लिये सादर समर्पित करता हूं।

विद्यानुरागी धीर-गम्भीर-वीरमूर्ति **श्रीमान् महाराज-कुमार साहिव श्री १०८ श्री मानसिंहजी** महोदयका इतिहास-प्रेम वड़ा प्रशंसनीय था, आपके ही इतिहास-प्रेमको सम्मान देकर आपके समयमे रायवहादुर **पंडित गौरीशङ्करजी** आये थे और घोदारसीका शिलालेख एवं अन्यान्य शिलालेखोंकी प्रतिलिपियां यहांसे लेगये थे, जिनसे मुझे कई अंशोमे अच्छी सहायता मिली है, जिसका फलस्वरूप कुछ ऐतिहासिक विवरण इस प्रस्तावनामे है, अतएव प्रस्तुत काव्यमे निवेशित कीगई ओजस्विनी चित्रमूर्तिके अन्तर्यामीको मै अपने आभारी हृदयसे धन्यवाद अर्पण करता हूं।

॥ श्रीराधरेन्द्रो जयति ॥

हरिभूषणं महाकाव्यम् ।

'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वाऽपि तन्मुखम्' इस वचनके अनुसार काव्योंके प्रारम्भमें आशीर्वाद, नमस्कार या वर्णनीय वस्तुका निर्देश किया जाता है, इसी नियमका अनुसरण करके यहां कवि प्रारम्भमें आशीर्वादात्मक मङ्गल श्लोक प्रस्तुत करता है।

वामाङ्के गिरिजा रहःकलुषिता धत्ते न पादं पुरो
नालापं कुरुते न गायति भृशं मूर्धानमाधुन्वती ।
इत्थं योऽनुकरोति सान्त्वनविधौ तस्याः कुरङ्गीदृशो
भव्यं वो वितनोतु मङ्गलतनुर्नृत्येऽर्द्धनारीश्वरः ॥ १ ॥

अर्थः—भगवान् गङ्गाधरके वाम अङ्कमें विराजमान गिरिजाने मान ग्रहण किया है, इसलिये नृत्यके समय वह अपना चरणारविन्द न आगे रखती है, न भाषण करती है, न गाती है, सब बातोंके लिये सिर हिलाती है (मना करती है)। गिरिजाके इस प्रणय-कोपको दूर करनेके लिये जब भगवान् शङ्कर सान्त्वना करते हैं तब गिरिजाका ही अनुकरण करते हैं (क्यों कि आपका और गिरिजाका स्वरूप एक ही अङ्गके दो विभाग हैं, इसलिये ऐसा होना अनिवार्य है और यह उपहास-चेष्टा है, इस कारण इसमें प्रणय-कोप भी शीघ्र ही दूर होजाता है) ऐसे भगवान् मङ्गलमूर्ति अर्द्धनारीश्वर शङ्कर आपका कल्याण करें।

व्यङ्ग्यार्थः— 'वाम' शब्दका अर्थ प्रतिकूल भी है और पार्वती शङ्करकी वामाङ्गरूपा है, इसलिये इनका रहस्यके समय प्रतिकूल होना सहज है। इसके अतिरिक्त आप गिरिजा हैं—पर्वतपुत्री हैं, इसलिये पर्वतकी कठोरता आपमें भी अनुवृत्त है, अत एव ऐसा दीर्घ मान ग्रहण किया है। 'पादम्' इस एक वचनसे एक चरण भी आगे नहीं रखती है, 'आलापम्' इस एक वचनसे एक बार भी नहीं बोलती है, अल्पवाचक 'आ' अव्ययसे थोड़ा भी नहीं बोलती है, 'धत्ते' 'कुरुते' इन आत्मनेपदकी क्रियाओंसे आलाप और नृत्य आपको अभीष्ट हैं और इनके न करनेमें जो आतिशय्य (क्लेशरूप) फल है, उसका आपको अनुभव हो रहा है इत्यादि भाव अभिव्यक्त होते हैं।

'धुन्वतो' यह परस्मैपदकी क्रिया सूचित करती है कि दोनोका अङ्ग अभिन्न होनेसे गिरिजा जो शिरश्चालन करती है, उससे भगवान् शङ्करका शिरश्चालन होता है और वह नकलके रूपमे उपहासमूचक होनेसे मानका भङ्ग कर देता है, जो कि मानभङ्ग भगवान् शङ्करको अभीष्ट है।

यहां मानमूलक विप्रलम्भ शृङ्गार हरगौरीविषयक रतिभावका अङ्ग है, इसलिये 'रसवत्' अलङ्कार है। 'वृत्त्यनुप्रास' 'श्रुत्यनुप्रास' शब्दालङ्कार प्रायः सभी श्लोकोंमें है।

इस सम्पूर्ण सर्गमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है, केवल एक स्रग्धरा शार्दूलविक्रीडित दोनोकी उपजाति है।

इस काव्यमें वीर रस प्रधान है, शृङ्गार आदि अन्य प्रासङ्गिक गौण हैं, अतएव वीररसानुकूल 'शार्दूलविक्रीडित' छन्दसे इसका प्रारम्भ किया है।

वकार अमृत-बीज है, इसलिए इसका काव्यके प्रारम्भमें होना श्रोता वक्ता सभीके मङ्गलका सूचक है। इसी प्रकार प्रारम्भमें भूमिदेवताक मगणका होना भी शुभ है ॥ १ ॥

कवि अपने गर्वका परिहार करता है—

वंशः क्वातिगभीरवृत्तगहनो भास्वत्प्रसूतो महान्
हृष्टो जन्म चकार यत्र सुभगं रामावतारो हरिः।
क्वाहं मन्दमतिः करोमि सहसा तद्वर्णने साहसं
हासायैव तु केवलं भवति तत्श्रीमत्कवीनां पुरः ॥ २ ॥

अर्थः—जहाँ प्रसन्न होकर भगवान् रामचन्द्रने ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन षड्गुणोसे परिपूर्ण अवतार ग्रहण किया है, वह गम्भीर-चरित्रशाली अत्युच्च सूर्यवंश कहाँ?, और मैं मन्दबुद्धि कवि कहाँ?, अतः उक्त वंशके वर्णन मे साहस कर रहा हूँ, यह आप कविजनोंके आगे केवल उपहासके लिये ही हो रहा है

यहाँ अत्युच्च सूर्यवंश और मन्दबुद्धि कवि, इन दोनो विरूपोंका संघटन होनेसे विषमालङ्कार है। 'हसं हासायैव' यह छेकानुप्रास है। दोनोकी मिलकर तिलतण्डुलवत् संसृष्टि है ॥ २ ॥

मन्दः काङ्क्षति वादिनं सुरगुरुं त्यक्त्वा विवेकं यथा
लज्जा मद्धृदयं दुनोति न तथाप्येषो न दोषो मम।
यस्मात्कर्णपथेन तद्गुणसुधाधारा कवीनां गुरवा-
दागत्याशु करोति पल्लवयुतं शुष्कं मनोभूरुहम्॥ ३॥

अर्थः—जैसे कोई मूर्ख विवेकका त्याग कर बृहस्पतिको अपना वादी बनाना चाहे और उसको लज्जा बाधा न करे, इस तरह मेरे हृदयको भी लज्जा बाधा नहीं करती है, तथापि यह मेरा दोष नहीं है, क्योंकि कवियोंके मुखसे प्रकट हुई उपर्युक्त वराकी गुणसुधाधारा कर्णमार्गसे आकर मेरे शुष्क मनोवृक्षको पल्लवित कर रही है।

यहाँ पूर्वार्धमें उपमा और उत्तरार्धमें रूपक अलङ्कार है, दोनोंकी संसृष्टि है॥३॥

कवि प्रथम मालव देशकी प्रशंसा करता है जिसके अन्तर्गत यह कोठल प्रदेश है—

लोका यत्र लसन्ति शोकरहिता विख्यातसत्यव्रता
देशे वर्षति वारि वाञ्छितफलं पूर्णास्तडागादयः।
सस्यैरुल्लसतीव भूः प्रतिगृहं पीनौधसो धेनवः
पृथ्वीमण्डलमध्यगो विजयते देशो महामालवः॥ ४॥

अर्थः—जहाँके लोक निःशोक और प्रसिद्ध सत्यप्रतिज्ञ हैं, जहाँ इन्द्र अपेक्षाके अनुसार वर्षा करता है, तालाव, बावली आदि जलाशय सदा जलपूर्ण रहते हैं, हरे हरे धान्योंसे पृथ्वी प्रसन्न-सी मालूम होती है, प्रत्येक घरमें बड़े २ थनवाली (यथेष्ट दूध देने वाली) गायें हैं, ऐसा इस भूमण्डलके मध्यभागमें मालव देश है।

यहाँ 'प्रसन्न सी' यह क्रियोत्प्रेक्षाऽलङ्कार है, और समृद्धि तथा श्लाघ्य वस्तु-का वर्णन होनेसे उदात्त अलङ्कार भी है। दोनोंकी संसृष्टि है॥ ४॥

कवि कोठलकी राजधानी देवलियाका वर्णन करता है—

तस्मिन्देवलपत्तनं परिलसत्युच्चैःस्फुरद्गोपुरं
नानामङ्गलतूर्यनादनिवहैः संलक्षितं सर्वतः।
सौधैः सुन्दरकान्तिभिर्विलसितं भूपैरनेकैस्ततं
दृष्टं कस्य मनाङ्मनो न हरते भासा भुवं द्यौरिव॥ ५॥

अर्थः—उस मालव देशमें देवल नामक नगर है, जिसके नगरद्वार बड़े ऊँचे हैं; नगरमे चारो ओर सीमन्त, यज्ञोपवीत, देवप्रतिष्ठा आदि मङ्गल कार्योंके माङ्गलिक बाजे सदा बजते ही रहते है, सुन्दर २ बहुत राज भवन हैं, जिनमे बाहरसे आये हुए अनेक राजा महाराजा ठहरते हैं, मानो पृथ्वी पर आया हुआ स्वर्ग हो, ऐसा देवल नगर देखतेही किसका दिल न चुरा लेता है।

यहाँ समृद्धि-वर्णन होनेसे उदात्त अलङ्कार है, इसमे उत्थापिता 'मानो पृथ्वी पर आया हुआ स्वर्ग हो' यह उत्प्रेक्षा है, दोनोका अङ्गाङ्गी-भावसे सङ्कर है ॥ ५ ॥

यस्यां सप्त समुल्लसन्ति परिखाः सम्पूर्णमध्या जलै-
र्धात्रा भूरिव निर्मिता किमपरा संवेष्टिता सागरैः ।
उच्चैःकाञ्चनवप्रकान्तिनिवहैरादीपिता सर्वतो
लङ्केव प्रतिभाति काञ्चनमयी मध्येजलं सा पुरी ॥ ६ ॥

अर्थः—जिसके चारो ओर जलकी भरी हुई सात खाइयाँ है, जिनसे वहाँकी भूमि ऐसी मालूम होती है, मानो सप्त सागरोसे घिरी हुई दूसरी भूमि ब्रह्माने बनाई है। इस प्रकार जलके बीचमे उच्च काञ्चनमय शहरकोटके प्रकाशपुञ्जोंसे चहुँ ओर प्रकाशमाना सुवर्णमयी देवलपुरी लङ्का-सी मालूम होती है ।

दूसरी 'भूमि और लङ्का-सी' दोनो द्रव्योत्प्रेक्षा है ॥ ६ ॥

यस्मिन्तोरणधोरणी विजयते यस्यां मयूरावली
चञ्चच्चञ्चुपुटान्तरेषु शुशुभे हैमी चलच्छृङ्खला ।
स्थूणा-षोडश-निर्मिताः प्रवितता ये राजता मण्डपा-
राजन्ते भवनेषु मङ्गलमया लोकेषु लोकोत्तराः ॥ ७ ॥

अर्थः—जिस पुरीमे भवनोके बाहरके दरवाजे बड़े ही सुन्दर है और उनपर बैठी हुई पालतू मयूरोकी श्रेणी कि जिसके पैरोमे सोनेकी साँकले है, जिनको मयूर अपनी चोंचोसे हिला रहे है, बड़ी शोभा देती है । सभी भवनोमे चाँदीके माङ्गलिक मण्डप, जिनमे सोलह २ स्तम्भ लगे हुए है, लोकोत्तर शोभा दिखा रहे है ।

समृद्धि और श्लाघ्य वस्तुका वर्णन होनेसे उदात्त अलङ्कार है ॥ ७ ॥

यस्मिन्देवलपत्तने परिलसन्त्यभ्रंलिहोऽट्टालिका
नृत्यन्त्यः प्रमदाः परं विदधते तत्राप्सरःसम्भ्रमम् ।
किञ्चान्यत्कथयामि कौतुकमितो यत्रेन्दुबिम्बान्यह-
न्याकाशे विलसन्ति कोकयुगलं नृत्यत्यनल्पं ततः ॥ ८ ॥

अर्थ.—जिस देवल नगरमें गगनचुम्बिनी अटारियाँ शोभित हैं जिनमें नृत्य करती हुई स्त्रियाँ अप्सरा होनेका भ्रम उत्पन्न करती हैं। और दूसरा कौतुक यह कहता हूँ कि जहाँ दिनमें अनेक चन्द्रबिम्ब (मुखचन्द्र) आकाश में क्रीडा करते हैं और चक्रवाकोंका मिथुन (दोनों स्तन) यथेष्ट नृत्य करता है।
यहाँ पूर्वार्द्धमें भ्रान्तिमान् है और उत्तरार्द्धमें रूपकातिशयोक्ति है ॥ ८ ॥

प्रासादाः परितो लसन्त्यतितरामुच्चैःस्फुरत्केतवः
स्फूर्जत्कान्तसुवर्णकुम्भनिवहैरत्यन्तमुल्लासिताः ।
यत्रचञ्चलखञ्जरीटनयनाः कुर्वन्ति नृत्यं पुरः
श्रीकृष्णस्य तमालकोमलदलश्यामस्य यस्मिन् भृशम् ॥ ९ ॥

अर्थ —जहाँ बडे ऊँचे देवमन्दिर सुशोभित हैं, जो चमकते हुवे काञ्चन-कलशोंसे अलंकृत मालूम होते हैं और जिनपर पताका फहरा रही हैं, तथा तमाल तरु के कोमल पल्लव समान श्यामवर्ण भगवान् श्री कृष्णके (श्रीगोवर्द्धननाथजीके) सामने खञ्जनके समान रुचिर चञ्चल लोचन वाली सुन्दरियाँ यथेष्ट नृत्य करती हैं।
'तमालकोमलदलश्याम' और 'खञ्जरीटनयना' दोनों पदोंमें लुप्तोपमा है ॥ ९ ॥

यस्मिन्नीरपथे तमालरुचिरे हृत्वेव सञ्जीवनं
यूना पूर्णघटा घटोपमकुचा हस्तैकहस्तोत्पलाः ।
प्रोद्यन्नूपुरशिञ्जितैरतितरामाकारयन्त्यः स्मर
चेतः कस्य हरन्ति न प्रियतमाः कन्दर्पचापभ्रुवः ॥ १० ॥

श्लोक ९—कुर्वन्ति इस परस्मैपदकी क्रियासे मालूम होता है कि ये स्त्रियाँ राज्य की ओरसे या महन्तजीकी ओरसे नृत्य कर रही हैं-अर्थात वेश्या या गोलने हैं।
श्लोक १०—यूनामित्यत्र 'मूर्ध्नाऽऽधाय सुवर्ण कुम्भयुगलम्' इति पाठान्तरम्।

अर्थः—जलाशयके (संभवतः श्रीनाथजीकी बावड़ीके) तमालतरुमण्डित मार्गमें परस्पर हाथ मिलाए हुए कामके कमानके समान सुन्दर भौंहें वाली सुन्दरियाँ, जिनके कुच कलशके समान गोल उठे हुए और विशाल हैं, सिरपर सोनेके दो दो गगरे पानीसे पूरे भरे धरे हैं, जिनमें जीवन (जल) क्या भरा है ? मानो जवानोंका जीवनही हरण करके भर दिया है । पैरोंमें नूपुर हैं, जिनके झणत्कारोंसे मदन देवका आवाहन कर रही हैं, ऐसी पुरवासियोंकी प्रियतमा किन-के अन्तःकरणका हरण नहीं करती हैं ? ।

यहाँ जीवन-हरणमें (जल ग्रहणमें) जीवन-हरण क्रियाकी और चित्त-विकाररूप कामके उत्पादनमें आवाहन क्रियाकी संभावना होनेमें क्रियोत्प्रेक्षा है ॥ १० ॥

तस्मिन्पत्तनमध्यवर्ति धवलं श्रीदेवलेन्द्रप्रभो-
र्नानारत्नसुवर्णदण्डरचितासंख्यातकेतुव्रजम् ।
उच्चैश्चारणमङ्गलध्वनिभृतं निःसाणनादाकुलं
सेवायातसमस्त-शस्त-चरितद्वारस्थवीरव्रजम् ॥ ११ ॥

अर्थः—देवल पुरके मध्य भागमें राजमन्दिर है, (राजमहल है) जिसपर नानारत्न-खचित काञ्चनमयदण्ड-रचित अनेक ध्वज फहरा रहे हैं । जहाँ चारणो के द्वारा उच्च स्वरसे पढ़ीगई माङ्गलिक कविताओंका गुञ्जारव चहुँ ओर व्याप्त हो रहा है, नक्कारे बज रहे हैं, सेवाके लिये आये हुए समस्त प्रशस्त-चरित्र-शाली वीर सरदार दरवाज़े पर (ड्योढ़ी पर) खड़े हैं ।

यहाँ समृद्धि और श्लाघ्य वस्तुका वर्णन होनेसे अर्थालङ्कार ‘उदात्त’ है और ‘व्रजम्’ पदान्त भाग द्वितिय और चतुर्थ चरण में समान है, अतः पादभागवृत्ति ‘संदष्ट’ यमक शब्दालङ्कार है ॥ ११ ॥

आस्तामत्र महामहीशगणनाकोटीषु कोटी पुरा
राणा-श्रीयुतमेदपाटतिलक-श्रीमोकलस्यात्मजौ ।
जातःकुम्भमहीपतिस्तदुभयोः श्रीचित्रकूटाधिपः
क्षेमाराबनभूपतिस्तदनुजः श्रीदेवलेन्द्रप्रभुः ॥ १२ ॥

अर्थः—मेदपाट-मही-महेन्द्र श्रीमान् महाराणा मोकलजीके दो पुत्र थे,

बड़े कुम्भाजी और छोटे क्षेमसिंहजी। इनमें कुम्भाजी चित्तौड़के अधिपति हुए क्षेमसिंहजी सैलूम्बर-नरेश्वरोंके मूल पुरुष हुए। ये उस समयके वर्तमान अनेक राजामहाराजाओंमें उच्च कोटिके माने जाते थे ॥ १२ ॥

गाढं यद्गुणवर्णनेऽनिचपला स्थित्वा मदीयानने
प्रौढं भद्रसनासना भगवती वाणी तु यं गायति ।
द्वात्रिंशद्भिरलङ्कृतः प्रभुरभूत्सल्लक्षणैः सर्वदा
क्षेमारावतभूपतिः क्षितितले नेदृक्परो लक्षितः ॥ १३ ॥

अर्थः— (उत्कण्ठाकी अधिकतासे) गुणवर्णनमें शीघ्र गाढ प्रवृत्ति करती हुई प्रात:स्थाम वर्तमाना भगवती सरस्वती मेरे मुखमें जिह्वारूप आसन पर विराजमान होकर जिनकी यथेष्ट स्तुति करती है, वे महारावत क्षेमसिंह सामुद्रिक बत्तीस * शुभ लक्षणोंसे सुशोभित थे, इन-सा और कोई दृष्टि गोचर नहीं होताथा ॥ १३ ॥

नित्यं सत्यपरायणोऽतिमतिमान्धर्मप्रतिष्ठापको
लुब्धो नो कृपणो न रक्षणपरो नित्यं प्रजानामपि ।
दण्डे पुत्रकलत्र शत्रुविषये भिन्नो न भूवल्लभः
क्षेमारावतसन्निभः क्षितितले भूतो न भावी विभुः ॥१४॥

अर्थः—महारावत क्षेमसिंह सत्यपक्षपाती मतिमान और धर्मके संस्थापक थे, लोभ और कृपणताका उनमें लेश नहीं था। वे सदा अपनी प्रजाओंका पालन करनेमें तत्पर रहते थे। पत्नी, पुत्र और शत्रु इनमें भेदभावसे दण्डका प्रयोग नहीं करते थे। क्षेमसिंह जैसा नरेश पृथ्वीपर न हुआ है, न होगा ॥ १४ ॥

तूर्णं पूर्णमभूत्कृत कृतसदाचारे विचारे क्षणे
तस्मिन्रक्षति मेदिनीं सजलधि भव्य च न व्याहृतम् ।

---

* बत्तिस शुभ लक्षण कर, चरण, नख, जिह्वा, ओष्ठ, तालु और नेत्रोंके प्रान्त भाग ये सात लाल रंगके, बगल, छाती, नाक, नख और मुख ये छ उपर उठे हुए, दांत, त्वचा, केश अङ्गुलियोंके पर्व और नख ये पाँच पतले, स्तन, नयन, जिह्वा ठुड्डी और भुजा ये पाँच लम्बे, ललाट, छाती और मुख ये तीन चौड़े, गर्दन, जाँघ और लिङ्ग ये तीन छोटे, स्वर नाभी और पराक्रम ये तीन गहरे, ये सब मिलकर ३२ लक्षण हैं।

नो वर्णेषु बभूव सङ्करभवो वर्णस्य धर्मस्य वा
निर्विघ्ना ऋतवोऽभवन् वनहिता सस्यान्यसूतावनी ॥ १५ ॥

अर्थः—इस समुद्रमण्डिता महीकी जिस समय क्षेमसिंह रक्षा करते थे, उस समय प्रजाओंका सद्विचार शीघ्रही कार्य रूपमें परिणत होजाता था। किसी भी शुभ कार्यमें बाधा नहीं होती थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंमें वर्णसङ्करता और धर्मसङ्करता नहीं थी। वसन्त, ग्रीष्म, आदि ऋतु निर्विघ्न परिवर्तित होते थे, भूमि, घास, लकड़ी आदि वन प्रदेशसे, और धान्य क्षेत्रमय प्रदेशसे उत्पन्न करके हित सम्पादन करती थी, अथवा अपेक्षित जलसे हित सम्पादन करती हुई भूमि सस्य (धान्य) उत्पन्न करती थी ॥ १५ ॥

नीतिं नैव जहौ शशास नियतं पुत्रानिव स्वप्रजा
दण्ड्यान्क्वापि मुमोच न प्रियजनान्स्नेहेन कुत्रापि सः।
नादण्ड्यानपि वैरिणः क्वचिदहो कोपेन वाऽदण्डय-
च्छ्लाघां नाप्यकरोद्विकारमदथ स्वीयां कदापि क्वचित् ॥ १६ ॥

अर्थः—उक्त महाराजाने कभी नीतिका त्याग नहीं किया था; अपनी प्रजा का सदा पुत्रवत् शासन करते थे। दण्ड पाने योग्य होने पर प्रियजनोंकाभी कभी स्नेहसे त्याग (रिहाई) नहीं करते थे। और दण्ड पाने योग्य न होने पर अपने विपक्षियोंकोभी कभी कोपवश होकर भी दण्ड नहीं देते थे। एवं स्वयं अपनी प्रशंसा कहीभी कभीभी नहीं करते थे ॥ १६ ॥

कार्येषु प्रतिपादितेषु मनसि प्रायोऽस्य भूयादसौ
मन्त्रोऽस्येति महीशमौलितिलकस्याप्तोजनोऽशङ्कत।
आलापैर्मधुरैरुदारचरितैर्वृत्त्या च गम्भीरया
लोकान्नित्यमरञ्जयन्नरपतिः कामोपमेयाकृतिः ॥ १७ ॥

अर्थः—महीपालमौलितिलक, क्षेमसिंहके विश्वासपात्र प्रामाणिक मनुष्य भी 'आपका हार्दिक विचार प्रायः यह होगा' ऐसा कार्योंका आरम्भ होनेपर तर्क करते थे। उक्त नरेन्द्रका रूप कामके समान सुन्दर, वातचीत मीठी, चरित्र उदार,

---

श्लोक १६ करोद्विकार गर्वादिचित्तविकारान् मथ्नातीति विकारमद्।

और वृत्ति गम्भीर थी, इन गुणोंसे आप अपनी प्रजाका सदा हृदय-रञ्जन करते रहते थे ॥ १७ ॥

यस्यामात्यगणः कदापि कलुषीभूतो न जातो मनाङ्
नित्यं तत्प्रियमाचरन्प्रियकथामाभाषमाणः पुरः ।
पृथ्वी पुण्यवती च वेदनिरता विप्राश्च सत्याशिषः
सत्या नाथपरायणाः खलु जनास्तस्मिन्भुवं शासति ॥१८॥

अर्थ—महाराजा क्षेमसिंहके मन्त्रियोंके मनमें कभी भी जरा भी मलिनता पैदा नहीं हुई थी, सदा कर्म और वचनसे भी मंत्री आपका प्रिय ही करते थे। उस समय पृथ्वी पुण्यवती थी। ब्राह्मण वेदाध्ययन करनेवाले थे, इनके आशीर्वाद सत्य होते थे। प्रजा सत्य पालन करनेवाली और स्वामिपरायणा थी ॥ १८ ॥

सम्पूर्णैव मही महाध्वरकृता ऋत्विग्गणेभ्यो मुदा
रिङ्गत्तुङ्ग-तुरङ्गमेधविषयेष्वापादिता दक्षिणा ।
भाण्डागारमिहार्पितं न कतिधा येन स्वयं भूभुजा
चन्द्रो नाविशदस्य मेरुरपि तद्वक्षो नु मन्यामहे ॥ १९ ॥

अर्थः—उक्त महाराजाने अश्वमेध यज्ञमें अपने अधिकारकी सम्पूर्ण भूमि यज्ञ क्रिया सम्पादन करनेवाले ब्राह्मणोंको प्रसन्न होकर दक्षिणा रूपमें देदी थी। अनेक बार स्वयं आपने अपना खजाना भी ब्राह्मणोंके भेट कर दिया था। हमें तो अनुमान होता है कि चन्द्रमा और मेरु ये दोनों हृदयमें नहीं आये (दानके समय याद नहीं आये, अन्यथा इनका भी दान कर देते)।

यहाँ अनुमानालङ्कार है। 'चन्द्रो न्याविशदस्य' ऐसा पाठ यदि हो तो 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है ॥ १९ ॥

न क्वाप्युन्नमयन् धनुर्न च मनाग्भ्रूवक्रतामुन्नयं
श्वारैरेव भुवं व्यलोकयदसौ विश्वासयुक्तैः स्वयम् ।
यत्पादाम्बुजयुग्मसुन्दरनखप्रोद्यन्मयूखावली
जाता कोमलकेतकीदलमिव क्षोणीशचूडासु यत् ॥ २० ॥

श्लोक १९ नाविशदस्य, इत्यत्र न्याविशदस्य मेरुरपि तद्वक्षो नु' इति पाठः कश्चिद्भवेत् ।

अर्थः—जिनके चरणनखचन्द्रमे उदित होनेवाली मयूखमाला वसुन्धरा-श्रेणीकी शिखाओंसे केतकीके कोमल दलके सदृश थी, उन महाराज क्षेमसिंहने न कभी धनुष उठाया, न कभी ज़रा भ्रुकुटी ऊँची की, ये केवल विश्वासपात्र गुप्त दूतो से भूमण्डलका निरीक्षण करते रहते थे।

यहाँ मनोज्ञत्वादि सामान्य धर्मका उपादान न होनेसे धर्मलुप्ता श्रौती उपमा है। चन्द्रके विना मयूखमाला असम्भव है, इसलिये नखमे चन्द्रत्वका आरोप आर्थिक है॥ २०॥

नित्यं विन्ध्यवनीष्वखेलदवशोऽप्याखेटमुर्वीपतिः
स्वीयैरेव सुहृद्गणैः कतिपयैर्नीलाम्बराडम्बरैः।
उत्थानाय तनोर्भृशं परतनोराचेष्टितप्राप्तये
लक्ष्यामोघतया यतोऽरिनिवहाः कुर्वन्ति नोच्चैःशिरः॥ २१॥

अर्थः—महाराज क्षेमसिंह व्यसनोंके वश न रहते हुए भी अपने केवल कुछ नीलाम्बरधारी मित्रोके साथ विन्ध्याचलके जङ्गलोंमें प्रतिदिन शिकार खेलते थे। वह इसलिये कि शरीर शीघ्र उठे अर्थात् शरीरमे स्फूर्ति रहे और दूसरोकी इष्ट अनिष्ट चेष्टाये मालूम हों, तथा निशाना अचूक लगे, जिससे कि शत्रु शिर ऊँचा न करें॥२१॥

गाढं जालमबन्धयत्प्रथमतोऽरण्यस्थलीषु स्वयं
हाकारैरथ गाहितासु नितरामाखेटलीलाधरैः।
आदौ तत्र ससम्भ्रमं प्रचलिताः क्रूरेङ्गिता जन्तवः
पश्चादापतिताः प्रचण्डलगुडैर्जालेषु संरक्षिताः॥ २२॥

अर्थः—शिकारके समय प्रथम तो जङ्गलो मे मजबूत जाल (फन्दा) बन्धवाया, वादमे शिकारी लोगोंसे हाका करवाया, तब (क्रोधसे) क्रूर चेष्टाये करते हुए जङ्गली घातक जीवों ने प्रथम शीघ्रता से भागना प्रारम्भ किया, अनन्तर पास आनेपर शिकारियोंने उनको बड़ी बड़ी लाठियोंसे फन्दो में रोक लिया॥ २२॥

उच्चैर्दोडिमरञ्जितैः करलसत्कोदण्डबाणोत्करै-
रागत्य प्रतिहारहारिवचनैर्विज्ञापितो भूपतिः।
पश्चात्तेन समागतश्च सहसा भूयो विनम्यादरा-
च्चाथास्वामिरितो वनं वनचरैरुद्धं घनैर्वागुरैः॥ २३॥

अर्थः—उन शिकारियोंके दाडिममें रङ्गे हुए वस्त्र और हाथमें धनुर्बाण थे। तब उन्होंने ड्योढीवानोंके विनीत वचनोंके द्वारा महाराणा साहेब को मालूम करवाया, तब महाराणा साहबके साथ उनकी मुलाकात हुई, उन्होंने प्रणाम करके आदर-पूर्वक अर्ज की कि हम शिकारी भीलोंने जङ्गलको चारों ओर अच्छे जालोंसे (फन्दोंसे) रोक लिया है ॥ २३ ॥

सत्कारं प्रथमं विधाय वनिनामारुह्य नीलं हयं
प्रासान्योऽपि ययौ स यौवनधनैरापूरितं तद्वनम् ।
पश्चात्सत्वरमिनाश्ववारनिवहाः सज्जाः करिण्यो गजा-
श्चानेके चलिता द्रुतं द्रुतवति पृथ्वीपतावग्रतः ॥२४॥

अर्थः—महाराजा साहेबने प्रथम उन शिकारी भीलों का सत्कार किया। बादमें केवल भाला लिये हुए (आसमानी) घोडे पर चढ कर, अपनी जवानीको ही धन माननेवाले जवानोंसे भरे हुए उस जङ्गल में गये। जब माहाराजा साहब घोडा दौडाते हुए आगे चले गये, तब पीछेसे अनेक शीघ्रगामी घुडसवार, तथा सजे हुए हाथी और हथनियाँ, सब रवाना हुए ॥ २४ ॥

उत्क्षिप्यैकविभागतोऽतिविततं जालं जटालं हरिं
सुप्तं वागुरिकैर्ददर्श नृपतिर्मानं स्वकीयं व किम् ।
उत्थाप्य प्रमुखैर्जघान स शरैर्गर्जन्तमुच्चैस्तटि-
त्यागच्छन्तमहो ननाश नितरां कट्टारकेणैव तम् ॥ २५ ॥

अर्थः—महाराणा क्षेमसिंहने जाल बाँधनेवालोंके साथ बहुत दूर तक फैले हुए जालको एक ओरसे ऊँचा उठाकर सोते हुए सिंहको जो देखा, वह मानो अपने मानको ही देखा गया। बाद शिकारियोंके मुखियाओं-द्वारा उठवा कर गर्जना करते-हुए सिंहके बाण लगाया, जब वह लपक कर पास आगया तो उसे कटारसे ही मार दिया। यहाँ सिंहमें मानरूप वस्तुके तादात्म्यकी सम्भावना होनेसे वस्तूत्प्रेक्षा है ॥ २५ ॥

श्लोक २४ प्रासान्योऽपि । इत्यत्र त्रुटितस्थानं अनुवादकेन पूरितम्

एकस्मादथ पल्वलादतिजवान्निर्गत्य नष्टं कुलं
कोलानामतिभीरु योऽत्र कठिनाघातेन भूमिं लिखत् ।
तस्मिन्नेकतरो महाबलयुतोऽरण्यं विवेश द्रुतं
रुद्धः क्रोध इव श्वभिः सपदि तैर्दृष्टोऽश्ववारैरपि ॥ २६ ॥

अर्थ—अत्यन्त भयभीत सूवरोंका झुण्ड एक जङ्गली तलाईमेंसे तेज़ वेगके साथ निकल कर गायब होगया । उसमेंसे एक बलिष्ठ सूअर कठोर दन्ताघातोंमें भूमिको खोदता हुआ शिकारगाहके जङ्गलमें घुसा । मूर्तिमान् क्रोधके समान (आते हुए) उस सूअरको शिघ्रही शिकारी कुत्तोंने रोक दिया और घुड़सवारोंने भी उसे देखलिया । यहाँ स्वभावोक्ति अलङ्कार है ॥ २६ ॥

हस्तैरुद्धृतशक्तयोऽश्वगतयः क्रोधं स्वकीयं वहो
रोमाञ्चैःकथयन्तमान्तरमरं दंष्ट्राकरालप्रभम् ।
मत्वाऽऽखेटपदूँस्तृणाय शुनकानारात् क्रुधा रुन्धतो-
धावन्तं परिवव्रिरे धृतधियो हन्तुं महासूकरम् ॥ २७ ॥

अर्थः—हाथोंसे भालोंको ऊपर उठाये हुए घुड़सवारोंने काम तमाम करने के विचारसे दाढ़ोंसे भयङ्कर मालूमहोनेवाले उस विशाल सूअरको चारोंओरसे घेर लिया, जो कि पास जाकर गुस्सेके साथ रोकते हुए कुशल शिकारी कुत्तोंको तिनकेके समान मान कर शीघ्रताके साथ दौड़ता चला जाता था और खड़े हुए रोंगटोंसे आन्तरिक कोपको कह रहा था ॥ २७ ॥

वृक्षैरश्मचयैश्च कांश्चन तथा वेगैर्गतेर्वञ्चयन्
कांश्चिन्नो गणयंश्च दुर्दमसदः प्रासप्रहारान् किरिः ।
चक्राकाररयेण वीरनिवहान्संभ्रामयामास यो
वीरो धीरमनाः स्वयं नृपवरो व्यापादयामास तम् ॥ २८ ॥

अर्थः—जो दुर्दान्त मत्त सूअर कुछ भालोंके प्रहारोंको वृक्ष, चट्टान और अपनी गतिके वेगोंसे बचता हुआ और कुछभी पर्वाह न करता हुआ वीरोंके कई

श्लोक २७ मत्वा, इत्यादि त्रुटितस्थाने अनुवादकेन पूरितम् ।
श्लोक २८ वृक्षैरश्मचयैरित्यादि ,, ,,

झुण्डका गोलाकार घुमाता रहा, उसको स्वयं वीर धीर महाराना साहिबने मारा ॥ २८ ॥

मुक्ताः कापि च चित्तला मृगकुलेष्वत्यन्तमुक्तत्रपा
लीनाः कुत्रचिदिङ्गुदीतरुतले पालाशपत्रान्तरे ।
दीनाः कापि पतन्ति भूतलसमस्थानेष्वदीना मृगा
गाढन्ते विषमप्रदेशविषये घ्नन्तीव कण्ठाण्ठकाः ॥ २९ ॥

अर्थ —कहां (शिकारी) चीतोंको हिरनों पर छोड़े, परन्तु वे अत्यन्त निलज्ज कहां तो हिङ्गोटके वृक्षोंके नीचे और कहां ढाकके पत्तोंमें छिप रहे हैं। कहीं समतल भूमीमें दीन दशामें दौड़ रहे हैं । कहीं ऊँचे नीचे दुर्गम पर्वत प्रदेशोंमें व ठग बड़ी रुदनाकर साथ समीपाश्रित लोगोंको 'मारते हो' इस तरहका भाव दिखा रहे हैं ।

यहाँ कवि भूत घटनाका भी वर्णनके समय साक्षात्कार कर रहा हो इस तरह वर्तमान कालकी क्रियाओंसे वर्णन कर रहा है, परन्तु मैं साक्षात्कार करता हूँ ऐसा प्रकटमें कहता नहीं है, इस लिये यहाँ 'भाविक' अलङ्कार व्यङ्ग्य है ॥ २९ ॥

बध्वा शृङ्गेषु जालं शिथिलितगतयो लोकविश्वासभाजो
गच्छन्तः स्वीययूथे स्वकुलमपि हठाद्बन्धनाय प्रवृत्ताः ।
मुक्ता वागुरिकैर्मृगाः खलु क्रुधाऽयुध्यन्नरण्यस्थितै-
रन्योन्यं ननु शृङ्गबन्धविधिना गाढं गृहीता जनैः ॥३०॥

अर्थ—शिकारियोंके द्वारा छोड़े गये, मनुष्योंका विश्वास करने वाले मृग सींगोंमें फन्दा लगा कर धीरे धीरे चलते हुए अपने यूथमें (जाकर) अपने वर्गोंका भी बँधवाने के लिये प्रवृत्त हो गये । वे वन अरण्यवासियोंके साथ गुस्सा होकर परस्पर सींगोंसे लड़ने लगे । उसी समय शिकारियोंने दौड़कर उन सबको मजबूत पकड़ लिया । स्वभावोक्ति ॥ ३० ॥

श्येना कापि कराङ्गना कनकैश्चर्मावृते रक्षिना
लक्ष्येषु प्रणिपेतुराशु निनगमार्गेटकैः शिक्षिताः ।

धावन्तश्च ततोऽश्ववारनिवहास्तस्मिन्मुहुर्दृष्टय :
खातान्नाकलयाम्बभूवुरभितो वर्त्मातिशुष्कोदकान् ॥ ३१ ॥

अर्थः—चामके मोजोंसे ढके हुए हाथों पर रक्खे हुए, शिकारियों के द्वारा अच्छी तरह सिखाये गये शकरे, शीघ्र हाथो परसे उड़ कर शिकार पर गिरे। बाद-मे शिकारकी ओर नजर रख कर घुडसवार ऐसे दौड़े कि मार्गके दोनों ओरके सूखे गढ़े उनको नहीं मालूम हुए। अर्थात् ऊँची नीची भूमि भी समतल मालूम हुई ॥ ३१ ॥

उद्यन्निर्मलमेदपाटविलसद्वंशैकचूडामणि-
श्रीमन्माधवभट्टसूरितनयो दिक्चक्रविख्यातधी :।
गङ्गारामसहाकविर्व्यरचयच्चञ्चत्सुधासोदरं
तस्मिन् श्रीहरिभूषणे सुचरिते सर्गोऽयमादिर्गत : ॥ ३२ ॥

इति श्रीहरिभूषणे महाकाव्ये कवि-श्रीगङ्गारामकृतौ मृगया-
विहारो नाम प्रथम : सर्ग : ॥

अर्थः—मेदपाटदेशमें सुशोभित रहने वाले वंशके एक चूड़ामणि श्रीमान् पं. माधव भट्टजीके पुत्र जगत्प्रसिद्ध बुद्धिमान् गङ्गाराम महाकविने जो सुधासदृश काव्य बनाया है, उस 'हरिभूपणचरित्र' काव्यमें यह प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३२ ॥

यह कवि गङ्गाराम - विरचित 'हरिभूषण' महाकाव्यमे 'मृगया—विहार' नामक प्रथम सर्ग पूर्ण हुआ ॥
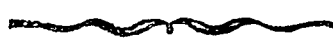
श्लोक ३१ वर्त्मातिशुष्कोदकान् इत्यत्र 'धृत्वाऽतिशुष्कान् बकान्', इति पुरोदृष्ट : पाठ : ।

बभूवाथ महावीर. सूर्यमल्लस्तदात्मज: ।
कर्णोपमेयो दानेन मानेनापि सुयोधन: ॥ १ ॥

अर्थ:—उन महाराजा क्षेमसिंहके पुत्र सूर्यमल्ल हुए, जो बड़े वीर पुरुष थे दानमें कर्ण और मानमें सुयोधन (दुर्योधन) थे ॥ १ ॥

वर्णाश्चत्वार एवैते नाप्नुवन्नन्यवाच्यताम् ।
वर्णा इव महीपाले तस्मिन् शासति मेदिनीम् ॥ २ ॥

अर्थ:—जिस समय महाराजा सूर्यमल्ल भूमिका शासन करते थे, उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण, ककार आदि वर्णोंके या श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण इन चारों युगीय वर्णोंके समान अपने २ नामके अनुसार अपने २ स्वरूपमें ही स्थित रहे ॥ २ ॥

द्विजपूजापरो धीमान्धर्मज्ञो लोकवत्सल: ।
कामानपूरयत्तस्य नित्य कामदुघेव भू: ॥ ४ ॥

अर्थ:—उक्त महाराजा ब्राह्मणोंकी पूजामें तत्पर बुद्धिमान, धर्मके ज्ञाता और प्रजाप्रेमी थे । भूमि कामधेनुके समान सदा आपके मनोरथोंकी पूर्ति करती थी । पूर्णोपमा ॥ ३ ॥

तस्यासन्पुरतो नित्य नानादेशनिवासिन ।
चारणा वन्दिपुत्राश्च कवयोऽपि विपश्चित. ॥ ४ ॥

अर्थ:—नानादेशवासी चारण, बन्दीजन, कवि और अनेक विद्वान उनके सामने उपस्थित रहते थ ॥ ४ ॥

प्रत्यह धीमतस्तस्य विनोदैनैव पण्डितै: ।
अगमद् व्यसनाक्लिष्ट काल. शोकविवर्जित: ॥ ५ ॥

श्लोक २ की टीका—श्वेत 'शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णता गत: ' इति भारतम् ।

अर्थः—बुद्धिमान् महाराजा सूर्यमल्लका प्रतिदिन सब समय व्यसन और शोकसे रहित, विद्वानों के साथ केवल विनोदमें ही व्यतीत होता था ॥ ५ ॥

यस्य प्रतिहता शक्तिर्जाता नैव कदाचन
नृपाणामग्रगण्योऽभूत्पाकशासनविक्रम : ॥ ६ ॥

अर्थः—ये महाराज इन्द्रके समान पराक्रमी और राजाओंमें अग्रगण्य थे। आपकी प्रभुत्व मन्त्र और उत्साह तीनो प्रकारकी शक्तियां कभी कुण्ठित नहीं हुई थीं ॥ ६ ॥

बलिः कर्णः शिबिर्वायं भानुरग्निर्यमो नु किम् ।
अर्थिप्रत्यर्थिसंदृष्टः संशयानकरोत्क्रमात् ॥ ७ ॥

अर्थः—महाराजा सूर्यमल्लके दर्शन करनेपर अर्थी जनोंको (याचकोंको) बलि है, कर्ण है या शिवि है ? और प्रत्यर्थी जनोंको (शत्रुओंको) यह सूर्य है, अग्नि है या यम है ?, ऐसा संशय होता था।

यहाँ अर्थी और प्रत्यर्थी दोनोंके संशयमें विषयीभूत बलि आदि और भानु आदिका, क्रमसे निर्देश किया है, इसलिये 'यथासङ्ख्य' अलङ्कार है 'सन्देह' अलङ्कार भी स्पष्ट है, दोनोंकी संसृष्टि है ॥ ७ ॥

यत्कीर्तिचन्द्रविसरचान्द्रिकापानमुत्तमम् ।
अकुर्वन्नलमानन्दाच्चकोरा इव पण्डिता : ॥ ८ ॥

अर्थः—पण्डित जन चकोरोंके समान जिनके कीर्तिचन्द्रकी चन्द्रिकाका पान आतृप्ति आनन्दसे करते थे।

चतुर चकोरोंके पानके लिये यहाँ कीर्ति चन्द्रके रूपसे परिणत होगई है, इसलिये परिणामालङ्कार है ॥ ८ ॥

यस्यासन्पुरतोऽनेके वाजिनो वायुवैरिण : ।
नृत्यन्तस्तरलोत्तुङ्गकेसरा :साचिकन्धरा : ॥ ९ ॥

अर्थः—जिनका ग्रीवाप्रदेश मरोड़दार है तथा उसकी केशावली चञ्चल

और ऊँची नहीं हुई है, ऐसे वायुके साथ (चलनेमें) प्रतिद्वन्द्विता करनेवाले अनेक घोड़े जिनके सामने नृत्य करते थे।

समासगता लुप्तोपमा। 'वैरि' शब्द से समानता लक्षित होती है॥ ९॥

अखिलं मेदिनीचक्रं स्वातपत्रादनातपम्।
अभवत्तस्य भूजानेश्चण्डभानुसमाकृते॥ १०॥

अर्थः—उन सूर्यके समान तेजस्वी पृथ्वीपति महाराज सूर्यमल्लकी छत्रच्छाया-से समस्त भूमण्डल तापक्लेशरहित होगया था।

विवेचन—छत्रसे दूसरोंके द्वारा होनेवाला आतपक्लेश दूर होसकता है, परन्तु उसके नीचे रहनेवाले 'चण्डभानुसमाकृते' इस पदसे सूचित हुए सूर्यसे होनेवाला आतपक्लेश कैसे दूर होसकता है?, इसका उत्तर 'भूजाने' इस पदसे मिलता है अर्थात् भूमि महाराज सूर्यमल्लकी पत्नी है, जैसे सूर्य दूसरोंको ताप पहुँचाता है, न कि अपनी पत्नीको, इसी तरह सूर्यमल्लरूप सूर्यसे शत्रुओंको ताप पहुँच सकता है, न कि पत्नीरूपा भूमिको, प्रत्युत पति होनेसे इसको ताप क्लेशोंसे बचाता ही है, इसी तापक्लेश निवारण-सामर्थ्यका कवि छत्रच्छायाके रूपमें वर्णन कर रहा है।

जो महाराज सूर्यमल्लका निजी आतपत्र (छत्र) है वह समस्त भूमण्डलको आतपसे बचानेमें कारण नहीं होसकता, अतः उसको जो कविने अपनी प्रतिभासे कारण बनाया है, इससे यहाँ प्रौढोक्ति अलङ्कार है॥ १०॥

उत्थानैकस्वभावस्य गूढमन्त्रस्य भूपतेः।
अविश्वासेन निःश्वासा बभूवुर्विद्विषां गणाः॥११॥

अर्थः—अपनी सलाहको गुप्त रखनेवाले उन्नतिमें प्रयत्नशील महाराज सूर्यमल्ल किसी पर भी विशेष विश्वास नहीं करते थे (सावधान रहते थे)। इससे (व्यर्थ-मनोरथ होकर) दुःखसे शत्रु निःश्वास लेते रहते थे।

यहाँ सभी विशेषण साभिप्राय होनेसे 'परिकर' अलङ्कार है॥ ११॥

अहसँस्तस्य सततं शक्रं वीरा रणोद्भटाः ।
विमानगमनं भूयो मानिनोऽद्भुतविक्रमाः ॥ १२ ॥

अर्थः—उनके अद्भुत पराक्रमी रणनिपुण मानी योद्धा विमान गमन (जो आकाशयानसे गमन है, वही मानरहित गमन है) करनेवाले इन्द्रको निरन्तर हँसते थे ।

हसनेसे उपमा आक्षिप्त है, परन्तु उपमान इन्द्र विमानगामी है और उपमेय योद्धा समानगामी है, इसलिये यहाँ ' व्यतिरेक ' अलङ्कार है ॥ १२ ॥

के के न विद्विषस्त्रासं प्रापुरालोक्य भूपतिम् ।
दिवा भीता इवोलूकाः सहस्रांशुं सुदुःसहम् ॥ १३ ॥

अर्थः—दिनमें दुःसह सूर्यके दर्शनसे जैसे उलूक डर जाते हैं, इसी तरह महाराज सूर्यमल्लके दर्शनसे शत्रु डर जाते थे । पूर्णोपमा ॥ १३ ॥

पृथ्वी राजन्वती येन वर्णयामो वयं कथम् ।
यत्पुरस्ताच्छचीजानिः केवलं पाकशासनः ॥ १४ ॥

अर्थः—जिन महाराजा साहिबसे यह पृथ्वी राजन्वती (अच्छे राजा वाली) थी और जिनके आगे शचीपति-इन्द्र भी केवल पाकशासन (बच्चोंका शासन करनेवाला) ही था, उनका हम कैसे वर्णन करें ।

' पाकशासन ' शब्दका यौगिक अर्थान्तर ग्रहण करनेसे यहाँ ' निरुक्ति ' अलङ्कार है ॥ १४ ॥

तत्सूनुः सूर्यमल्लोऽभूत्क्षत्रनक्षत्रचन्द्रमाः ।
उत्क्षिप्तपक्षहितध्वान्तं कुवलयं प्रसादयन् ॥ १५ ॥

अर्थः—क्षेमसिंहके पुत्र महाराज सूर्यमल्ल क्षत्रियरूप नक्षत्रोंमें चन्द्रमा थे । आपने शत्रुरूप अन्धकारका, (पक्षान्तरमें अनिष्टकारी अन्धकारका) उच्छेद करते हुए भूमण्डलको (पक्षान्तरमें कुमुदको) प्रफुल्लित कर दिया था । यहाँ 'साङ्ग रूपक' अलङ्कार है ॥ १५ ॥

यत्कृपाणकथा लोके जनानां तृतीयज्वरम् ।
उषोद्वाहकथैवेषा हन्ति सद्यः श्रुतैव या ॥ १६ ॥

अर्थः—जिनके तलवारकी कथा उषाके विवाहकी ही कथा थी जो कि सुनने ही शीघ्र जगतमें तृतीय-ज्वरको (मदको) नष्ट कर देती थी।

विशेष—उषाके विवाहमें बाणासुरके साथ युद्ध हुआ था, उसमें परास्त होकर माहेश्वर ज्वरने जब भगवान श्रीकृष्णकी स्तुति की, तब श्रीकृष्णने यह वर दिया था कि जो तुम्हारे हमारे इस संवादका स्मरण करेगा उसको तुम्हारा भय नहीं होगा, वह ज्वर निजारा ही था।

तलवारकी कथा उषाके विवाहकी कथाके रूपमें परिणत होगई है, इसलिये परिणामालङ्कार है ॥ १६ ॥

युद्धाङ्गणमहामल्लः सूर्यमल्ल इति प्रभुः ।
यथाभिधो जितारातिर्ब्रह्मणा निर्मितः स्वयम् ॥ १७ ॥

अर्थ.—महाराज सूर्यमल्ल 'यथा नाम तथा गुण' इस लोकोक्तिके अनुसार लड़ाईके मैदानमें मल्ल ही थे, उनको शत्रुओंसे विजय ही प्राप्त होता था, मानों स्वयं ब्रह्माने उनको ऐसा बनाया था।

'स्वयं ब्रह्माने उनको बनाया' यह प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा है ॥ १७ ॥

एकदा चित्रकूटेशो रायमल्लोऽतिवीर्यवान् ।
सिंहासनसमारूढो वीरालङ्कृतसंसदि ॥ १८ ॥
इत्यूचे वचनं क्रुद्धो रायमल्लः प्रतापवान् ।
मदाज्ञावीटिकां वीरः कोऽपि गृह्णातु सत्वरम् ॥ १९ ॥

अर्थ—चित्तोड़के अधिपति महाराणा रायमल्ल बड़े पराक्रमी और प्रतापी थे। उन्होंने एक दिन सिंहासन पर बैठे हुए वीर सरदारोंकी सभामें गुस्सेमें होकर यह वचन कहा कि कोई वीर मेरी आज्ञाके अनुसार शीघ्र बीड़ा उठावे ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥

श्लोक १६—'त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम् ।
यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम्' इति भागवतम् ।

उत्थाय च ततो भूपैरनेकैर्नामितं शिर: ।
वद नाथ! महावीर दुर्विनेयोऽस्ति कोऽपि चेत् ॥२०॥

अर्थ:—तब उठ कर अनेक राजाओंने सिर झुकाकर मुजरा किया और अर्ज़ की कि हे वीरशिरोमणे ! कोई भी इसमें शासन करने योग्य हो तो आज्ञा कीजिये ॥ २० ॥

अवोचदिति विज्ञप्त: सूर्यमल्लो महाबल: ।
व्यथयत्येव मर्माणि श्रुत एव न संशय: ॥ २१ ॥

अर्थ:—ऐसा निवेदन करनेपर महाराणाने कहा कि महाबली सूर्यमल्ल केवल श्रवणमात्रसे मर्मान्त दुःख पहुँचा रहा है यह निःसन्देह है ॥ २१ ॥

हनूमान्देवमल्लोऽभूदसुरेषु च रावण: ।
नरेष्वेको भीमसेनो द्वितीयोऽहं कुतोऽपर: ॥ २२ ॥

अर्थ—देवोंमें हनुमानजी मल्ल (महाबली) थे और असुरोंमें वैसा रावण था. मनुष्योंमें ऐसा एक भीमसेन था और दूसरा मैं हूँ . और कहाँ से ।

यहाँ सादृश्यवाचक इवादि पद नहीं है, और मल्लतारूप एक धर्मका अप्रस्तुत हनुमानजी आदि और प्रस्तुत महाराणा रायमल्ल, दोनों तरफ़ सम्बन्ध है, इसलिये 'दीपक' अलङ्कार है ॥ २२ ॥

न राज्यं रोचते मह्यं न पुत्रा न च बान्धवा: ।
न स्त्रियोऽप्यसवो यावत्तस्मिन्जीवति भूपतौ ॥ २३ ॥

अर्थ:—जब तक वह राजा सूर्यमल्ल जीवित है, तब तक मुझे न राज्य, न पुत्र, न बन्धु, न स्त्रियाँ और न प्राण कुछ भी अच्छा मालूम नहीं होता है ॥ २३ ॥

वीरै: कैश्चिद्वचस्तस्य श्रुतमप्यश्रुतं कृतम् ।
अन्यैरन्यप्रसङ्गेन परैरपरदर्शनात् ॥ २४ ॥

अर्थ:—कुछ वीरोंने यह वचन सुना भी न सुना कर दिया. दूसरे सरदारोंने और कुछ बात चीतका प्रसङ्ग निकाल कर बात टाल दी । कुछ और सरदार दूसरोंकी ओर देखने लग गये ॥ २४ ॥

कुर्वाण श्मश्रुणी वक्रे क्रोधारुणितलोचन ।
कृतान्तस्यापि सद्दृष्टो भीतिनिपातमचीकरत् ॥ २५ ॥

अर्थ —इस घटनासे महाराणा रायमल्लको ऐसा क्रोध आया कि क्रोधमें नेत्र लाल हो गये और मूछें मरोड़ीं, उस समय दर्शन करनेपर महाराणा रायमल्ल यमराजके लिये भी भय उत्पन्न करते थे।

स्वभावोक्ति और अत्युक्ति दोनोका अङ्गाङ्गीभावसे सङ्कर है। क्योंकि अत्युक्ति स्वभावोक्तिसे उत्थापित है ॥ २५ ॥

क्षणात्खड्ग समादाय जङ्घास्फोटपटुर्बली ।
सिंहासने कराघातमकरोत्ससदि स्वयम् ॥ २६ ॥

अर्थ —बलशाली महाराणा रायमल्लने जाँघपर ताल ठोंककर तत्काल खड्ग ग्रहण किया और सभामें सिंहासन पर हाथ से मारा। स्वभावोक्ति अलङ्कार है ॥ २६ ॥

तदात्मजो महावीर पृथ्वीराजो रणाग्रणी ।
तेनोत्थाय नमस्कृत्य वीटिका याचिता तत ॥ २७ ॥

अर्थ —तब महाराणाके पुत्र रणमें अग्रगण्य महावीर पृथ्वीराजने उठकर प्रणाम किया और महाराणासे बीडा माँगा ॥ २७ ॥

अवश्य मारणीयो मे सूर्यमल्लो महाबली ।
निराकारोऽपि नालीक सपक्षो हन्ति वैरिण ॥ २८ ॥

अर्थ —(पृथ्वीराज बोला-) सूर्यमल्ल बडा बलवान है, तथापि उसको मैं अवश्य मार सकूँगा, क्योंकि निराकार भी (धनुषमें छूटनेके बाद) बाण पक्षवाला (पङ्खवाला) होनेसे शत्रुओंको मार देता है। अथवा निराकार और अलीक—तुच्छ—भी ना—मनुष्य—पक्षवाला होनेसे शत्रुओंको मार देता है।

यहाँ उत्तरार्द्धमे मारणकी कारण सपक्षताका न्यास करके पूर्वार्द्धके अर्थका समर्थन किया है, इसलिये 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार है। 'नालीक' शब्दमे सभङ्ग और 'सपक्ष' शब्दमे अभङ्ग श्लेष है। अर्थान्तरन्यास श्लेषकी अपेक्षा नहीं करता है, इसलिये तिलतण्डुलवत संसृष्टि है ॥ २८ ॥

त्वत्प्रतापं पुरस्कृत्योन्मूलयिष्यामि वैरिणः ।
अर्द्धोदित इवानूरुस्तमोजालं सुदुस्सहम् ॥ २९ ॥

अर्थः—आधा उदय हुआ अरुण जैसे दुःसह अन्धकारको नष्ट कर देता है, इसी तरह आपके प्रतापको आगे करके सब शत्रुओंका उन्मूलन कर दूंगा। श्रौती पूर्णोपमा ॥ २९ ॥

ततःप्रस्थानमकरोत्पृथ्वीराजो महाशयः ।
सविग्रह इव क्रोधः संग्रामक्षितिमण्डनः ॥ ३० ॥

अर्थः—बादमे संग्रामभूमि—मण्डन महामना पृथ्वीराजने शरीरधारी क्रोधके समान प्रस्थान किया। उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ३० ॥

नानापटहनिःस्वानैर्भेरीभाङ्कृतिभिस्तथा ।
बभूव भुवनं व्याप्तं निःसाणध्वनिभिर्भृशम् ॥ ३१ ॥

अर्थः—उस समय उनके ढॉक, नोपत और नगाड़ोकी ध्वनिसे भुवन खूब व्याप्त होगया ॥ ३१ ॥

अवनी सवनी तस्मिन् चचाल चलति द्रुतम् ।
फणिनां न मणिः सोढुं शशाक शिरसा भुवम् ॥ ३२ ॥

अर्थः—शीघ्रताके साथ पृथ्वीराजके प्रस्थान करने पर वनमण्डित या सबका उत्पत्तिस्थान भूमण्डल कम्पित होगया और नागराज शेष भूमण्डलके भारको सहन करनेमे असमर्थ होगया। यहॉ अत्युक्ति अलङ्कार है ॥ ३२ ॥

अटत्कटकभारेण गतसाराशिराः स्फुटम् ।
चक्षुर्भ्यामिव नागेशः श्रुतिकार्यमचीकरत् ॥ ३३ ॥

अर्थः—चलती हुई सेनाके भारसे शेषके शिरका सार अवश्य नष्ट होगया था; इसी कारण मानो नागराज शेष कानोंका काम ऑखोसे करने लगा. अर्थात् शिरःशक्ति नष्ट होनेसे कर्णेन्द्रिय असमर्थ होगई, इस कारण शेष ऑखोंसे संभावनात्मक (अन्दाजिया) शब्दज्ञान करने लगा।

सर्प ऑखोसे सुनते हैं, उनके कान नहीं होते हैं, इस प्रसिद्धिके अनुसार यह कल्पना कीगई है।

यहाँ 'इव' शब्दका सम्बन्ध 'अचीकरत्' इस क्रियाके साथ है, इसलिये सम्भावनात्मक अर्थ ध्वनित होता है। यहाँ अत्युक्ति अलङ्कार है ॥ ३३ ॥

रजोभिः सैन्यसम्भूतैर्दिग्वधूनेत्रपातिभिः ।
लङ्कामपि ततोऽशङ्कामकरोद्रावणाऽनुजः ॥ ३४ ॥

अर्थ—उस रावणके छोटे भाई विभीषणने (पृथ्वीराजने) दिशारूपी सुन्दरियोंके लोचनोंमें गिरनेवाली सैन्योंसे उडी हुई धूलियोंसे लङ्काको भी साशङ्का बना दी।

'रावणानुज' 'दिग्वधूनेत्रपातिभिः' यह रूपक है, लङ्कामें शङ्काके सम्बन्धका असम्भव होनेपर भी उसका वर्णन किया है, इसलिये सम्बन्धातिशयोक्ति है। पृथ्वीराजका रावणानुज होना लङ्काके साशङ्क होनेमें विशेष प्रयोजक है, इसलिये दोनोंका अङ्गाङ्गीभावसङ्कर है ॥ ३४ ॥

धरान्दोलनसंभूतै रजोभिर्नेत्रसङ्गतैः ।
न दृष्टं न श्रुतं किञ्चिन्नागलोकनिवासिभिः ॥ ३५ ॥

अर्थ—भूमिके हिलनेसे उडे हुए रेणु नेत्रोंमें गिरते थे, जिससे नागलोकवासियोंने न कुछ देखा, न कुछ सुना।

सर्पोंमें देखना सुनना दोनों ही नेत्रोंसे होते हैं, इसलिये नेत्र बन्द होजानेसे देखना सुनना दोनों ही बन्द होगये।

यहाँ प्रस्तुत सेनाविस्तारके वर्णनमें अप्रस्तुत उसके कार्यरूप धरान्दोलन आदिका वर्णन किया है, इसलिये 'अप्रस्तुतप्रशंसा' है और अवास्तविक अद्भुत वर्णन होनेसे अत्युक्ति भी है, दोनोंका एकवाचकानुप्रवेश सङ्कर है ॥ ३५ ॥

वृथेति शङ्कते चक्षुःसहस्रं स्वयमात्मनः ।
रजोभिर्व्याप्तनेत्राणां करद्वयविमर्दनात् ॥ ३६ ॥

अर्थः—पृथ्वीराजकी सेनाधूलिसे इन्द्रके नेत्र ऐसे व्याप्त होगये थे कि वह स्वयं मेरे एक सहस्र नेत्र (दर्शन करनेमें असमर्थ होनेसे) व्यर्थ है, ऐसी शङ्का करने लग गया था, क्योंकि आँखोंको मसल कर दुरुस्त करनेके लिये हाथ दो ही थे।

यहाँ अत्युक्ति अलङ्कार है ॥ ३६ ॥

उभयो: पार्श्वयोर्बद्धा वहन्ति करभालय: ।
सध्वजा: संस्कृता मध्ये महत्यो हस्तिनालिका: ॥३७॥

अर्थ:—सेनाके पार्श्वभागमे दोनो ओर परस्पर बन्धी हुई ऊँटोकी कतारें बोझा लेकर चल रही थीं। बीचमें पताकाओसे सुशोभित सुसज्जित हाथियोकी बड़ी २ श्रेणियाँ थी ॥ ३७ ॥

वर्णैर्विरचिताऽनेकैर्ध्वजालि: शुशुभेतराम् ।
धनुरैन्द्रमिवासज्यं केतकीदलकोमलम् ॥ ३८ ॥

अर्थ:—अनेक रङ्ग विरङ्गे ध्वजोंकी पङ्क्ति केतकीपत्रके समान कोमल चढ़े-हुए इन्द्र-धनुषके समान शोभित होरही थी। उपमालङ्कार ॥ ३८ ॥

शरच्चन्द्र इव छत्रं रराज धरणीभृत: ।
कुवलयानन्दसन्दोहमरिचक्रवियोगकृत् ॥ ३९ ॥

अर्थ:—पृथ्वीराजका छत्र शारद चन्द्रके समान कुवलयको (चन्द्रविकासी कमलको या भूमण्डलको) आनन्दित करता था और अरिचक्रका (शत्रुसमूहका) या शत्रुओके चक्रव्यूहका, पक्षान्तरमे शत्रुरूप चक्रवाकका वियोग करता था, अथवा आरेवाले चक्रसे बचाता था। श्लेषगर्भा उपमा है ॥ ३९ ॥

श्रूयते स्म भृशं लोकै रथानामध्वनि ध्वनि: ।
सूर्यमल्लभयादेव रोदनं कुर्वतामिव ॥ ४० ॥

अर्थ:—मार्गमे लोग रथोंका शब्द इस प्रकार सुनते थे, मानो ये, रथ सूर्यमल्ल-के भयसे ही रोरहे हो। यहाँ मानो रोरहे हो यह क्रियोत्प्रेक्षा है ॥ ४० ॥

इष्टिकाभङ्गमानेन दृष्यभारेण संभृता: ।
रक्षिता: सर्वत: सर्वे वेसरा: क्षुद्रकेसरा: ॥ ४१ ॥

अर्थः—(इष्टिकाभङ्गमान) अनुमानतः पाँच मन वजन तम्बूओंका उनपर लगा हुआ था, ऐसे छोटी २ केशपालीवाले खम्भे, चारों ओर रक्खे गये थे ॥ ४१ ॥

उन्नन्निर्मलमेदपाटविलसद्वंशैकचूडामणि-
श्रीमन्माधवभट्टसूरितनयो दिक्कविख्यातधीः ।
गङ्गारामसमाख्यकविर्व्यरचयत्काव्यं सुधासोदरं
तस्मिन्श्रीहरिभूषणे सुचरिते सर्गो द्वितीयोऽगमत् ॥४२॥

अर्थः—पूर्वोक्त ।

इति श्रीहरिभूषणे महाकाव्ये कविश्रीगङ्गारामकृतौ युद्धनिर्गमनो नाम द्वितीयः सर्गः ।

कवि गङ्गाराम विरचित 'श्रीहरिभूषण' महाकाव्यमें यह युद्धनिर्गमन नामक द्वितीय सर्ग पूर्ण हुआ।

श्लोक ४१ की टीका इष्टिका — ईंट जितने वजनमें टूट जावे या ईंटके टुकड़े जितने हो जावें, वह 'इष्टिकाभङ्गमान' है, ऐसा अनुमान होता है। शब्दकल्पद्रुम आदि कोषोंमें इसके विषयमें कुछ नहीं मिला।

अथेति कृत्वोच्चपटीगृहान्सः
संप्रेषयामास नृपः स्वदूतम् ।
वपुःप्रकर्षेण महद्वचोभि-
र्विराजमानं विनयप्रधानैः ॥१॥

अर्थः—अनन्तर (मुकाम आने पर) पृथ्वीराजने ऊँचे तम्बू तनवा कर अपना ऐसा दूत (सूर्यमल्लके पास) भेजा, जो शरीरसे ऊँचा पूरा हृष्ट पुष्ट और जिसकी बातचीत नम्रतापूर्णा तथा प्रशंसनीया थी ।

इस सर्गमे उपजाति छन्द हैं, कहीं २ चतुर्थ चरण वंशस्थका है ॥ १ ॥

त्वरामुपादाय गतिं कुरुष्व
श्रीसूर्यमल्लं प्रतिबोधयेति ।
त्वं रायमल्लेन कुरुष्व सन्धिं
नो चेदथो मां किल राजपुत्रम् ॥ २ ॥

इत्थं जगाम त्वरया विमुक्तो
वक्ति स्म भाषे वचनं स दूतः ।
स्फूर्जत्प्रतापानिलतापितारेः
श्रीसूर्यमल्लस्य विभोःपुरस्तात् ॥ ३ ॥

अर्थः— (पृथ्वीराजने दूतसे कहा) शीघ्र जाओ और सूर्यमल्लको समझाओ कि तू महाराणा रायमल्लसे सन्धि कर ले । यदि ऐसा न हो तो मैं राजपूत हूँ यह उसे समझा दो । इस तरह कह कर शीघ्र ही विदा किया गया दूत प्रज्वलित प्रतापाग्निसे शत्रुओंको सन्तापित करनेवाले महाराजा सूर्यमल्लके सामने आकर (अग्रिम) वचन बोला ।

विवेचन—यहाँ राजपूत अपने लिये 'राजपूत हूँ' यह कह कर असाधारण शौर्य, वीर्य अभिव्यक्त करता है । व्यङ्ग्यको प्रकाशित करनेके लिये किसी अन्य विशेषण शब्दका प्रयोग नहीं किया है, इसलिये 'अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यरूप' ध्वनि है, 'विध्यलङ्कार' नहीं है ॥ २ ॥ ३ ॥

सभागतः षष्टिसहस्रवीरै-
राजन्मराजन्यकिरीटवन्द्यः ।

श्रीरायमल्लात्मज एप तेन
दौत्ये नियुक्तोऽस्मि भवत्सकाशम् ॥ ४ ॥

अर्थः—सभामें साठ हजार क्षत्रिय वीरोंके किरीट जिसकी नम्रसे वन्दना करते हैं, उस रायमल्लके पुत्र पृथ्वीराजने मुझे आपके पास दूतके रूपमें भेजा है ॥ ४ ॥

भेत्ता भुजानां च सहस्रबाहो-
र्लङ्काऽधिनाथस्य शिरोऽपहर्ता ।
विनाशकर्ता कुरुवंशजाना-
मधर्ममूलं कलहं वदन्ति ॥ ५ ॥

अर्थ'—अधर्मसे होनेवाला कलह ही कार्तवीर्यार्जुनके एक सहस्र भुजोंके उच्छेदमें लङ्केश रावणके शिरश्छेदमें और कुरुवंशके विनाशमें कारण था, ऐसा कहते हैं ॥ ५ ॥

यावद्भवेद्वैरिषु सन्धिलेखा-
स्तावन्न धीर' कलहे रतःस्यात ।
अत्यन्तपूरासु नदीषु शश्व-
न्नावीव दोर्भ्यां तरणप्रयासे ॥ ६ ॥

अर्थ'—जब तक शत्रुओंके साथ सन्धि होसके, तब तक पूर आई हुई नदियामें नौकाके रहते हुए भुजोंसे तैरनेके समान कलहमें अभिरुचि नहीं करना चाहिये । वाक्यगता श्रौती उपमा ॥ ६ ॥

अहङ्कृतिः प्राणिषु वर्तमाना
संवर्द्धते मानसमानभाजोः ।
आलीढयोः सर्वसुरै' समन्ता-
द्विषप्रसूतिर्मधुसर्पिषोरिव ॥ ७ ॥

अर्थ —देवोंने जिनका आस्वाद लिया है ऐसे मधु और घृत जब समान होजाते हैं तो विषकी अभिवृद्धि करते हैं, इसी तरह समान प्रतिष्ठा वाले जो प्राणियोंमें वर्तमान अहङ्कारकी अभिवृद्धि होजाती है । ॥ ७ ॥

न चात्मनस्तिष्ठति किञ्चिदूर्ध्वं
वस्तुप्रपञ्चे चतुराननस्य ।
जहाति नैनं किल दुःखितोऽपि
नराधिपः किं विषयैकसक्तः ॥ ८ ॥

अर्थः—ब्रह्माकी सृष्टिमें आत्मासे उत्तम कोई वस्तु नहीं है, इस आत्माका (संघातात्माका) क्लेशित मनुष्य भी त्याग नहीं करता है, विषय-परवश नरेश तो करे ही क्या ?।

त्रिविक्रमोऽयाचत सर्वदाता
बलिं बलिष्ठो नयदिव्यचक्षुः ।
तनुं दधानः कपटेन वामनी-
मपि स्वकार्यं कुरुते हि लोकः ॥ ९ ॥

अर्थः—नीतिशास्त्रमें दिव्यदृष्टि, परमशक्तिशाली और सबके लिये अपेक्षित वस्तुका दान करनेवाले भगवान् त्रिविक्रम देवने कपटसे छोटा रूप बना कर भी बलिसे याचना की थी, क्योंकि लोग अपना कार्य साधते हैं ।

तात्पर्य यह कि बड़े लोग भी मतलबके लिये मानका त्याग कर भीख माँगना मञ्जूर कर लेते हैं, अतः तुम भी सर्वसुखसाधन राज्यके लिये मानको ध्यानमें न लाकर, नम्रता मञ्जूर कर लो तो अयोग्य नहीं है ।

यहाँ विशेषका सामान्यसे समर्थन किया है, इसलिये अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ॥ ९ ॥

चोरः प्रविष्टो न करोति हानिं
मध्येगृहं संग्रहवस्तुनः किम् ।
प्रत्यर्थिभूपः कुरुते न किं किं
स्वदेशमन्तर्गत एव कष्टम् ॥ १० ॥

अर्थः—घरमें घुसा चोर संगृहीत वस्तुकी क्या हानि नहीं करता है ? अर्थात् अवश्य करता ही है, इसी तरह अपने देशमें प्रविष्ट हुआ प्रतिपक्षी नृप क्या २ कष्ट नहीं करता है ?, सब तरहसे कष्टकारक ही है ।

यहाँ अनिष्टकारक चोर और प्रतिपक्षी राजा दोनों समानधर्मियोंकी बिम्ब-प्रतिबिम्बभावसे उपस्थिति है इसलिये दृष्टान्त अलङ्कार है ॥ १० ॥

नष्टे स्वदेशे विजहाति लक्ष्मी-
स्तस्यां गतायां स्वजनो न रक्तः ।
जने विरक्ते न भवेज्जयश्री-
रनादृतो नश्यति यस्तया विना ॥ ११ ॥

अर्थ—नष्ट हुए स्वदेशको लक्ष्मी परित्याग कर देती है और लक्ष्मी चली जाने पर स्वजन स्नेह नहीं करते हैं और स्वजनोंके निःस्नेह होने पर जयलक्ष्मीका लाभ नहीं होता है और जो जयलक्ष्मीसे रहित हैं वे सबके अनादरपात्र होनेसे नष्ट होजाते हैं ।

अभिप्राय यह कि प्रतिपक्षी पृथ्वीराज स्वदेशमें प्रविष्ट होगया है, इसलिये अब महाराणा राजकुलमें मेल न कर लेंगे तो आत्मनाश पर्यन्तके अनर्थोंका मूल देश-नाश अवश्यम्भावी है ।

यहाँ उत्तरोत्तरका कारण पूर्व २ होनेसे 'कारण-माला' अलङ्कार है ॥ ११ ॥

सर्वैरुपायैः परिरक्षणीया
जिगीषुणा श्रीः कुलजाङ्गनेव ।
लक्ष्मीपतिः स्वोरसि सन्दधाति
चाञ्चल्यभावं भजते हि सा यत् ॥ १२ ॥

अर्थ—अत एव विजय चाहनेवाला सब उपायोंसे लक्ष्मीकी कुलवती वनिताके समान, रक्षा करे । लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु भी लक्ष्मीको अपने वक्षःस्थल पर धारण करते हैं, क्योंकि वह चञ्चल है ।

आशय यह है कि लक्ष्मी स्वभावसे चञ्चल है, इसलिये सब प्रकार रक्षा करनेकी शक्ति होने पर भी किसीसे झगड़ा नहीं करना चाहिये ।

यहाँ पूर्वार्द्धमें कुलवती वनिताके समान यह 'उपमा' है । उत्तरार्द्ध-वर्णित चाञ्चल्य ही रक्षा करनेमें तथा वक्षःस्थल पर रखनेमें कारण है, इसलिये सपूर्ण श्लोक वाक्यार्थहेतुक 'काव्यलिङ्ग' अलङ्कार है ॥ १२ ॥

वैरं वचोभिः कटुकैः स्वकीयैः
सहोदराणामपि वर्द्धते यद् ।
जिगीषुरन्तःकरणे कटुः स्वे
सुधारसं हि स्वमुखाद्विमुञ्चति ॥ १३ ॥

अर्थः—अपने कटु वचनोंसे भाईयोंमें भी परस्पर वैरकी वृद्धि होजाती है, अतः जय चाहनेवाला दिल कडुवा होने पर भी मुँहसे अमृत ही बरसता है।

मधुर वचन सुधारसमें डुवा दिये गये हैं, इसलिये 'रूपकातिशयोक्ति' अलङ्कार है ॥ १३ ॥

रत्नाकरेऽगाधजलेऽतिभीमे
यादोभिरन्तःपरिपूर्णमध्ये ।
तत्रापि सेतुं विरचय्य रामो
लङ्काऽधिनाथं निजघान बाणैः ॥ १४ ॥

अर्थः—भगवान् रामचन्द्रने मगर, मच्छ, कच्छ आदि जलीय जीवोंसे परिपूर्ण अगाधजल भयङ्कर रत्नाकर समुद्रसे भी सेतु बना कर बाणोंसे लङ्केश रावणका प्राण हरण कर लिया था।

भाव यह कि चाहे कितना ही सुरक्षित हो, प्रबल शत्रु अवश्य हानि करता ही है ॥ १४ ॥

चारा वयं क्वोक्तमितप्रबोधाः
क्व भूभुजोऽनुक्तविचारदक्षाः ।
क्षमस्व मे साहसितां तथापि
युक्तं यथोक्तं हि वदन्ति भृत्याः ॥ १५ ॥

अर्थः—दूसरोंके कथनानुसार परिमित ज्ञान रखनेवाले हम दूत कहाँ ? और न कही हुई बातका अनुसन्धान करनेमें चतुर राजा कहाँ ?, तथापि मैंने जो साहस किया है, इसकी क्षमा करें, क्योंकि सेवक स्वामीके वचनानुसार ही योग्य भाषण करते हैं ॥ १५ ॥

महीपतिस्तस्य वचो निशम्य
दिकाशिताशो दशनांशुपूरैः।
अगाधबुद्धिर्निजगाद वीर
क्षीरोदचेता वचनं वरिष्ठम् ॥ १६ ॥

अर्थः—अगाधबुद्धि तथा दुग्धनिधिके समान गम्भीर हृदय महाराज मयमल उस दूतका वचन सुन कर दन्तकान्तिसे दिशाओंको आलोकित करते हुए यह श्रेष्ठ वचन बोले ॥ १६ ॥

प्राघूर्णिको वाऽसि कथं मदीयः
किं वा जिगीषुः समुपागतो माम् ।
आद्योऽसि चेदत्र मनो मदीयं
नो चेत्त्वदीयं कुरु पूर्णमन्तः ॥ १७ ॥

अर्थः—तुम मेरे पाहुने हो या मुझे जीतनेकी इच्छासे आये हो ?, यदि पाहुने हो तो मेरा मनोरथ पूर्ण करो। यदि ऐसा न हो तो तुम अपनी इच्छा पूर्ण करो ॥ १७ ॥

रसातलं गच्छति भूतधात्री
सुमेरुमूलान्यपि सचलन्ति ।
वारां निधिः शुष्यति चेदपार-
स्तथापि मानो न कृशो मदीयः ॥ १८ ॥

अर्थः—धरा रसातलमें चली जाये, सुमेरुके मूल विचलित होजायें और अपार पारावार सूख जावे, तथापि मेरा स्वरूपाभिमान दुर्बल नहीं हो सकता।

यहाँ अत्युक्ति अलङ्कार है ॥ १८ ॥

विधाय सत्कारमथो तदीयं
सम्प्रेषयामास नराधिपस्तम् ।
इत्युक्तपूर्वं परिणद्धवर्मा
बभूव पश्चात्किल युद्धकर्मा ॥ १९ ॥

अर्थः—महाराज सूर्यमल्लने ऐसा कह कर दूतका सत्कार किया और उसे

का विदा किया, आद्में कवच पहिन कर युद्धके लिये तय्यार हुए।

यहाँ 'वर्मा' 'कर्मा' यह अन्त्यानुप्रास है ॥ १९ ॥

दिगङ्गनाभिर्मिलितं रयेण
सन्ताडिताश्वे कटके कशाभिः ।
वातैःपताकाजनितैर्दिगीशैः
क्षुब्धं नृपे नत्र कृतप्रयाणे ॥ २० ॥

अर्थः—सेनामे घोड़ों पर चाबुक पड़ते ही दिशारूपा सुन्दरियाँ वेगसे मिलमी गई। महाराज सूर्यमल्लने जब प्रस्थान किया तो सैनिक पताका- पवनोंसे इन्द्रादिक दिक्पाल विचलित होगये (घबड़ा गये)।

अत्युक्ति अलङ्कार है ॥२० ॥

आजौ प्रयाते रणसोमयाजौ
वैवाहिकं शेखरमादधाने ।
जयश्रियः किं न भजन्ति वश्याः
वातैः पताकानिलसम्भवैस्तम् ॥ २१ ॥

अर्थः—युद्धरूप सोमयागका सम्पादन करनेवाले महाराज सूर्यमल्ल जब विवाहका सेहरा धारण करके युद्धमें गये, तब वशीभूत हुई विजय-लक्ष्मियाँ पताका-पवनोंसे क्या सेवा न करे ? (अवश्य सेवा करना ही चाहिये)।

युद्धमें 'सोम' यागका आरोप शाब्दिक है और जयश्रियोंमें स्वयम्वरा कुमारिकाओंके भावका आरोप आर्थिक है, इसलिये एकदेशविवर्ती रूपक है ॥२१॥

भानोः स्फुरद्भिः किरणैश्चलद्भिः
प्रासव्रजैस्तोरणमाविधाय ।
रणाग्रिवीरान् रणदेवताः किं
रणेऽसिभिः संवरयाम्बभूवुः ॥ २२ ॥

अर्थः—रणकी देवताएं सम्फुटित होती हुई सूर्यकी किरणोंसे और चपल भालोंसे तोरण बना कर रणके अग्रणी वीरोंको तलवारोंसे वरण करनेके लिये प्रेरणा कर रही थीं।

विवेचन—तोरण वन्दनका अर्थ तो बाह्य द्वारकी देवताको नमस्कार करना है, परन्तु राजपूतानेमें तलवारसे तोरण वन्दन किया जाता है, इसीका रूपक इस श्लोकमें है, परन्तु कन्याएँ बड़ी बेशर्म हैं, स्वय तोरण बना कर तोरण वन्दनके लिये प्रेरणा कर रही हैं। एकदेशविवर्ति रूपक अलङ्कार है ॥ २२ ॥

समाप्य भूमि किल सङ्गरस्य
रणी रणस्तम्भमुरीचकार ।
धर्म्याणि वीराः पुरतः पदानि
पापानि पश्चादिति मामकानि ॥ २३ ॥

अर्थ—रणनिपुण महाराज सूर्यमल्लने युद्धभूमिमें आकर रणस्तम्भ गाड़ दिया और यह कहा कि हे वीरो ! मेरे (इससे) आगे पाँव पडना तो धर्म है और पीछे पाँव पडना पाप है ॥२३॥

इत्युक्तवांश्चतुरङ्गसंस्थो
मानी परानीकमपाचकार ।
प्रभुश्चलत्प्रासफलैकमित्रो
जये हि जैत्रः स्पृहते न मित्रम् ॥ २४ ॥

अर्थ—मानी और समर्थ महाराज सूर्यमल्लने बड़े घोड़े पर बैठ कर केवल चलते हुए भालेकी सहायतासे ही शत्रु-सेनाको हटा दी। क्योंकि विजयी पुरुष जय प्राप्त करनेमें मित्रकी अपेक्षा नहीं करता है। 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार है ॥ २४ ॥

ततो महासयुगसांयुगीनै-
र्व्योम्नि स्फुरत्कान्ति-करालखड्गैः ।
परस्पर शस्त्रकठोरघातै-
र्भटैरुपक्रान्तमहो तदानीम् ॥ २५ ॥

अर्थ—अनन्तर बड़ी २ लड़ाईयोंके लड़नेवाले योद्धाओंने आकाशमें प्रकाशका प्रसार करती हुई कराल तलवारोंसे तथा अन्यान्य शस्त्रोंके कठोर आघातासे उस समय समरका आश्चर्य-जनक आरम्भ कर दिया ॥ २५ ॥

गाढं दधानो हृदयेऽच्छचन्द्रं
चर्म्मर्ष्टिनाऽरिष्टकरोत्तमाङ्गम् ।
चिच्छेद कश्चिद् हृदि युद्धमत्तो
लत्ताप्रहारं निचखान पश्चात् ॥ २६ ॥

अर्थ:—किसी मस्त योद्धाने हृदय-प्रदेश पर ढालको मजबूत पकड़े हुए तलवारसे अरिष्ट करनेवाले विपक्षीका सिर अलग कर दिया और अनन्तर छातीमें एक लात मार दी ॥ २६ ॥

ववर्षुरेके विशिखैरलक्ष्यैः
परश्वधैः केऽपि च भिन्दिपालैः ।
अन्ये समुद्भ्रामितपट्टिशौघैः
परे रटद्भिर्युधि कोकबाणैः ॥ २७ ॥

अर्थ:—कुछ योद्धा ऐसे बाणोसे, जिनका देखनेवालोको अनुसन्धान भी न होसके, कोई फरसोसे, कोई गोफनोसे, कुछ दूसरे घुमा २ कर पट्टिशोसे (एक प्रकारके शस्त्रोंसे) कुछ और शब्द करते हुए कोकबाणोसे युद्धमे वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥

श्रीसूर्यमल्लेन पदानि पश्चा-
त्प्रदापितानि प्रभुणा परेषाम् ।
अप्यागतास्ते मुमुचुः प्रकुप-
त्कालीकटाक्षानिव बाणसङ्घान् ॥ २८ ॥

अर्थ:—समर्थ महाराज सूर्यमल्लने विपक्षियोके पॉव पीछे दिलाये, परन्तु वे फिर भी आकर कुपित हुई कालिकाके कटाक्षोके समान बाणोकी वर्षा करने लगे । उपमा ॥ २८ ॥

करीन्द्रकुम्भोन्नतकूटमध्याद्
विसुस्रुवुः शोणितपूरसङ्घाः ।
तालीवनालङ्कृतविन्ध्यमध्या-
द्दिवापगा गैरिकरक्तनीराः ॥ २९ ॥

अर्थः—लाड वृक्षोंसे सुशोभित विन्ध्य गिरिके मध्य भागसे निकलती हुई गरुआ मिट्टीसे लाल जल वाली नदियाँ हो, इस तरह बड़े २ हाथियोंके कुम्भस्थलके मध्य भागसे रुधिरकी धाराए प्रवाहित होने लगीं । उपमा ॥ २९ ॥

अन्योन्यकक्षापुटमध्यगाभि
शिरोधराभि' कृतकच्छहस्ता ः ।
महाऽऽहवे केसरचर्चिताङ्गाः
प्रचक्रमु केऽपि च मल्लयुद्धम् ॥ ३० ॥

अर्थ'—शरीर पर केसरका लेपन किया हुआ है, परस्परकी गर्दन परस्परके बगलमे दबी हुई है, एक दूसरेकी कछनी हाथमे पकड़े हुए हैं, इस तरह कोई वार उस महासमाममें मल्लयुद्ध करने लगे ॥ ३० ॥

शब्देन काँश्चित्परिचीयमाना-
न्निजप्रभोरुच्चरिताज्ञया च ।
व्याप्ते रजोभिर्भुवनेऽन्धकारे
परस्पर नायुधिका प्रजघ्नुः ॥ ३१ ॥

अर्थ'—चारो ओर धूलिसे आच्छन्न हुए जगतमें ऐसा अन्धकार होगया कि शस्त्रधारी योद्धाओंने अपने अपने पक्षम कई वीरोंको उनके शब्दोंसे और स्वामीकी आज्ञाके शब्दोंसे पहिचान कर परस्पर प्रहार नही किया ॥ ३१ ॥

लय गतास्तुर्यमृदङ्गनादै-
र्देहोल्लसत्कङ्कटका कबन्धाः ।
नृत्य प्रचक्रुर्धृतखड्गहस्ता'
स्वर्गाङ्गनाभि' परिवीक्ष्यमाणाः ॥ ३२ ॥

अर्थ—शरीर पर जिनके कवच शोभा पारहे हैं, हाथोंमें खड्ग हैं, स्वर्गकी अप्सराएँ जिनको देख रही हैं, ऐसे कबन्ध (सिरकटे वीर) तुरही और मृदङ्गोंके बजनेके साथ लय मिला कर नृत्य करते थे ॥ ३२ ॥

करोल्लसद्वीरकपालिकाभि:
प्रगीयमाने युधि योगिनीभिः ।

दन्तान्तरालस्थितमांसखण्डै-
नृत्यं समारब्धमलं परेतैः ॥३३॥

अर्थः—हाथोंमें वीरोंकी खोपड़ियां लेकर योगिनियाँ जब युद्धमें गाने लगीं तब दाँतोंमें मांसके टुकड़े दबा कर प्रेतोंने यथेष्ट नाचना आरम्भ किया ॥ ३३ ॥

दन्तावलैः क्वापि नियुध्यमानाः
कुम्भस्थलस्थापितपूर्वकायाः ।
स्वसादिषु त्यक्तकलेवरेषु
तुरङ्गमा युद्धमतीव चक्रुः ॥ ३४ ॥

अर्थः—अपने शरीरका पूर्व भाग कुम्भस्थल पर रख कर हाथियोंके साथ लडते हुए घोड़े अपने सवारोंका शरीरत्याग होने पर घोर युद्ध करने लगे ॥३४॥

इत्थं रजोव्याप्तदिगन्तराले
विपत्तयः पत्तिषु सन्निपेतुः ।
केचिद्विनेशुर्युधि केऽपि पेतुः
परे विचेतुस्त्वपरे विलिल्युः ॥ ३५ ॥

अर्थः—इस प्रकार सब दिशाओंमे धूलि व्याप्त होने पर पत्तियो पर (सेनाओं पर) विपत्तियाँ आने लगीं । युद्धमें कुछ वीर मर गये, कोई गिर गये और कोई अधीर होगये, शेष रहे (कहीं) छिप गये ॥ ३५ ॥

आकृष्टकोदण्डकठोरनादै-
रापूरिते भूगगनान्तराले ।
न शुश्रुवुः क्वापि वचांसि केषां
हेषामहो स्वीयतुरङ्गमाणाम् ॥ ३६ ॥

अर्थः—आकर्षित धनुषोंके कठोर टङ्कारोंसे पृथ्वी और आकाशका मध्य भाग ऐसा पूरित होगया कि कहीं भी किन्हींके भी वचन सुनाई न पड़े । आश्चर्य है कि अपने घोड़ोंका हिनहिनाना भी न सुनाई पड़ा ॥ ३६ ॥

परस्परं नष्टमहाऽऽयुधानां
कचाकचि क्वापि बभूव युद्धम् ।

उच्चैः समुत्थापितमुष्टिकाभि-
र्न साधनं हि स्पृहयन्ति धीराः ॥ ३७॥

अर्थः—शस्त्र नष्ट होजाने पर योद्धा परस्पर सिरके बाल पकडे हुए ऊँचे उठा २ कर मुक्कोंसे लडने लगे। क्योंकि धीर योद्धा साधनोंकी इच्छा नहीं करते हैं। अर्थान्तरन्यास ॥ ३७॥

युग्मम्—सङ्ख्येष्वसङ्ख्यानथ सूर्यमल्लो
विलोक्य वीरैरभिनन्द्यमानः ।
अस्त्रप्रयोगेषु विधीयमाना-
न्तद्देवताकस्मृतिमात्मवीरान् ॥ ३८॥

युध्यन्तु वीरा भवदीयशक्त्या
परं न दैव्या किल सङ्गरेऽस्मिन् ।
अवोचदुच्चैरिति वाक्यमुग्रं
स्वतन्त्रतां हि स्पृहयन्ति धीराः ॥ ३९॥

अर्थः—वीर जिनका अभिनन्दन कर रहे हैं ऐसे महाराज सूर्यमल्ल युद्धमें अपने वीरोंको अस्त्रोंके प्रयोगमें उन २ देवताओंका स्मरण करते देख कर ऊँचे स्वरसे कड़क कर यह वाक्य बोले कि हे वीरो! इस युद्धमें आप अपनी शक्तिसे लड़ो, दैवी शक्तिसे मत लड़ो, क्योंकि धीर पुरुष स्वतन्त्रताकी इच्छा रखते हैं।

सामान्यसे विशेषका समर्थन होनेसे 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार है ॥ ३८ ३९ ॥

पलायमानानिति काँश्चिदुच्चैः
सेनापतिः क्वापि वचो बभाषे ।
जये जयश्रीर्मरणेऽमरश्री-
र्मूढाः! पलायध्वमितो न युद्धात् ॥ ४०॥

अर्थः—कहीं सेनापतिने भागते हुए सैनिकोंको उच्च स्वरसे यह वचन कहा कि जय होने पर जय-लक्ष्मीका लाभ होगा और मरने पर अमरलक्ष्मीका लाभ होगा, मूर्खों! मत भागो।

पलायन न करनेमे तृतीयचरणोक्त अर्थ कारण होनेसे वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ॥ ४० ॥

घण्टानिनादश्रवणैकलक्ष्यैः
परस्परं हास्तिपकैरकारि ।
युद्धं गजानामतिदन्तघातै-
र्विद्युत्प्रपातैरिव लोकभीरु ॥ ४१

अर्थः—घण्टियोका शब्द सुननेमे जिनका प्रधान अवधान है, ऐसे हाथियोंके महावतों ने परस्पर बिजलीके चमकों कैसे हाथियोंके जोरदार दन्ताघातोंसे लोगोंके दिलोंको दहलाने वाले समरका समारम्भ कर दिया ।

दन्ताघातोको विद्युत्प्रपातकी उपमा देनेसे हाथियोमे मेघका साम्य गम्य है, इसलिये यहाँ एकदेशविवर्तिनी उपमा है ॥ ४१ ॥

श्रीसूर्यमल्लोऽपि तदातपत्र-
मर्धेन्दुबाणेन ननाश तत्र ।
चिच्छेद सोऽपि ध्वजमुच्चमस्य
श्रीचित्रकूटाधिपतिः स्वरोपैः ॥ ४२ ॥

अर्थः—महाराज सूर्यमल्लने अर्द्धचन्द्राकार बाणसे पृथ्वीराजका छत्र छिन्न कर दिया । चित्तोड़के युवराज पृथ्वीराजने भी अपने बाणोसे सूर्यमल्लका विशाल ध्वज ध्वस्त कर दिया ॥ ४२ ॥

ध्वजे विनष्टे युधि पञ्चबाणैः
कामातुरं काम इवाशु कोपात् ।
जघान गाढं हृदि देवलेशः
सोऽपि प्रकुप्तो निजघान शक्त्या ॥ ४३ ॥

अर्थः—युद्धमे ध्वजके नष्ट होने पर, कुपित हुआ कामदेव पञ्च बाणोंसे कामातुर पर प्रहार करता हो, इस तरह महाराज सूर्यमल्लने पृथ्वीराजकी छातीमे

श्लोक ४३ की टीका—पञ्चबाण-- १ कमल २ अशोक ३ आम्र ४ मोगरा ५ नील-कमल ये पञ्च बाण हैं ।

शीघ्र ही तीव्र प्रहार किया। पृथ्वीराजने भी कुपित होकर भालेसे इस पर प्रहार किया ॥ ४३ ॥

आकृष्य शक्त्याऽभिहत: स्वकोशा-
त्कौक्षेयकं तत्र रणाभिलाषी ।
अनेकशूरै: परित: परीत-
श्चकार वीरानपि य: परेतान् ॥ ४४ ॥

अर्थ—चारों ओर अनेक शूर सरदारोंसे घिरे हुए सग्रामकी कामना करने वाले महाराज सूर्यमल्लने म्यानसे तलवार निकाल कर विपक्षी वीरोंका सहार कर दिया ॥ ४४ ॥

विहाय युद्धं पुनरागतेन
श्रीरायमल्लस्य सुतेन तेन ।
द्वित्रैर्दिनैस्तत्र समागतेन
सुखस्य पृच्छा सचिवैरकारि ॥ ४५ ॥

अर्थ—युद्ध छोड कर दो तीन दिनोंके बाद लौट कर आये हुए महाराणा रायमल्लके पुत्र पृथ्वीराजने मन्त्रियोंके द्वारा महाराज सूर्यमल्लका कुशल पूछा ॥ ४५ ॥

आकारयामास महीपतिस्त-
मालिङ्गय हस्तैरभितिष्ठमान: ।
विराजमानोऽपि भृशं तदीयै-
रसीनिघातैरधिकैश्चतुर्भि: ॥ ४६ ॥

अर्थ—महाराज सूर्यमल्लने पृथ्वीराजको बुलाया और अपने शरीर पर उसके किये हुए चौरासी घाव लगे हुए थे, तथापि खड़े होकर हाथोंसे उसका आलिङ्गन किया ॥ ४६ ॥

अवोचदित्थं वचनं महीश-
स्तं भूपतिं भूतलचक्रवर्ती ।
भूमीपते ! स्वागमनं क्षतानि मां
न पीडयन्ति त्वयि दृष्टिमागते ॥ ४७ ॥

अर्थ:—भूमण्डल-चक्रवर्ती महाराज सूर्यमल्ल पृथ्वीराजसे बोले कि मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ, तुम मेरे आँखोंके सामने वर्तमान हो इससे मुझे घाव पीड़ा नहीं देते हैं ॥ ४७ ॥

भ्रातुः शरीरे सुखमस्ति किञ्चि-
त्किं वा तुरुष्काधिपतिः प्रकुप्तः ।
किं चित्रकूटाधिपतेरधीनं
मम स्वयं यद्भवता समागतम् ॥ ४८ ॥

अर्थ:—भाईका शरीर सुखपूर्वक तो है ?, क्या यवनराज बादशाह कुपित हुआ है ?, चित्रकूटाधिपतिका क्या कार्य मेरे अधीन है, जो कि तुम स्वयं मुझसे मिलने आये हो ॥ ४८ ॥

इत्थं समुक्तः स्वजनेषु तेन
प्रियं बभाषे वचनं नरेशः ।
या वीरसूः सा भवदीयमाता
यत्सूर्यमल्लं सुषुवे कुमारम् ॥ ४९ ॥

अर्थ:—बान्धवोंके बीचमें महाराज सूर्यमल्लके इस तरह कहने पर पृथ्वीराज यह प्रिय वचन बोला:- जो वीरजननी है वह तो केवल आपकी ही जननी है, जिसने कुमार सूर्यमल्लको जन्म दिया है ॥ ४९ ॥

त्वया पितृव्येन पितुर्निदेशा-
न्मया कृतं युद्धमिह क्षमस्व ।
यतो हि भूमण्डलमानराशे !
स्वीयं न युद्धे गणयन्ति धीराः ॥५०॥

अर्थ:—हे भूमण्डलके मूर्तिमान् मान ! आप मेरे काका हैं, तथापि पिताजीकी आज्ञासे मैंने आपके साथ युद्ध किया है, इस लिये क्षमा करें । धीर पुरुष युद्धमे 'ये अपने हैं' ऐसा विचार नहीं करते हैं ॥ ५० ॥

मध्येरणं भीष्मपितामहोऽपि
नालीकशय्यासु धनञ्जयेन ।

अकारि निद्रावशगः कुमारो
भीमोऽपि युद्धं गुरुणा चकार ॥ ५१ ॥

अर्थः—अर्जुनने समाममें अपने पितामह भीष्मको भी शरशय्याशायी कर दिया था। कुमार भीमसेनने भी अपने गुरु द्रोणाचार्यके साथ युद्ध किया था।

पूर्व श्लोकमें और इस श्लोकमें दोनोंमें मिलाकर विशेप, सामान्य और विशेप इनका क्रमसे पूर्व पूर्वके समर्थनके लिये उपन्यास किया है, इसलिये (विकस्वर) अलङ्कार है ॥ ५१ ॥

वचो गुरूणां ह्यविचारणीयं
प्राणात्ययेऽपीति बुधा वदन्ति।
इत्थं वचोभिः प्रतिबोधनेन
कुमार ईशो विनयेन रेजे ॥ ५२ ॥

अर्थ—जान जानेपर भी गुरुओंके वचनोंका विचार (करूँ या न करूँ) नहीं करना चाहिये। ऐसे वचनोंसे निवेदन करने पर महाराज सूर्यमल्ल विनयसे कुमार पृथ्वीराज पर प्रसन्न हुए ॥ ५२ ॥

समुत्थितः सोऽपि नृपः सभातः
श्रीचित्रकूटाधिपतेस्तनूजः।
स सूर्यमल्लोऽप्यचिरं ददर्श
प्रबोधितो वन्दिजनैः प्रभातम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—चित्रकूटपति महाराणा रायमल्लका पुत्र पृथ्वीराज भी सभामेंसे उठा और उन महाराज सूर्यमल्लने भी कुछ समय बाद वन्दी जनोंके जगाये जाने पर प्रभात हुआ देखा ॥ ५३ ॥

उत्पन्निर्मलमेदपाटविलसद्वंशैकचूडामणि-
श्रीमन्माधवभट्टसूरितनयो दिव्यकविर्यानघी।
गङ्गारामसदाकविर्व्यरचयद्यस्मत्सुधासोदरं
तस्मिन्पृथ्वीविभूषणे सुचरिते सर्गस्तृतीयोऽगमत् ॥ ५४॥

इति श्रीहरिभूषणे महाकाव्ये कवि-श्री गङ्गारामकृतौ
युद्धवर्णनो नाम तृतीयः सर्गः ।

अर्थः—पूर्वोक्त ही है ॥ ५४ ॥

यह कवि गङ्गाराम विरचित 'श्रीहरिभूषण' महाकाव्यमें तृतीय सर्ग
समाप्त हुआ ।

चतुर्थः सर्गः ।

अभवदस्य सुतः किल बाघजी,
सकलराजकुलाभिमतो बली ।
अरिकुलकथनः क्रतुमान् कृती,
सकलया कलया परिशोभितः ॥ १ ॥

अर्थः—महाराज सूर्यमल्लके पुत्र बाघासिंह हुए, जो सभी राजवंशोंके मान-भाजन शत्रुसंहारक यज्ञकर्मकर्ता सकलकलालङ्कृत बली और कुशल थे ।

'कलया' पदकी दो बार आवृत्ति होनेसे 'यमक' शब्दालङ्कार है । यह अलङ्कार इस चतुर्थ सर्गके सभी श्लोकोंमें है, प्रथमसे अनुवृत्त हुए वृत्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास शब्दालङ्कारोंके साथ इसकी संसृष्टि है ।

छन्द इस सर्गमें द्रुतविलम्बित है । यह कवियोंके अनुभवानुसार वसन्त-समयमें होने वाले वनविहार आदिके वर्णनमें अत्यन्त उपयुक्त है ॥ १ ॥

सकलराजबलेन विराजितो
नयविदां विदितो नयकर्मणि ।
सुखमयं किल वैषयिकं नयन्स्व-
वशतोऽवशतो बुभुजे भुवम् ॥ २ ॥

अर्थः—सभी राजोचित धनजनादि-बलोंसे विराजित और न्यायनिष्ठासे नीतिमान् मनुष्योंमें प्रसिद्ध महाराज बाघासिंहजी अपनी इन्द्रियोंको वश रख कर विषयसुखोंको प्राप्त करते हुए अनायास भूमिको भोगते थे ।

यहां ' विषय सुखोंका आस्वाद लेते हुए भूमिको भोगते थे ' इस उक्तिसे और ' भूमि ' शब्दके स्त्रीलिङ्ग होनेसे भी भूमिमें अप्रस्तुत नायिकाभावकी प्रतीति होती है, इसलिये ' समासोक्ति अलङ्कार है ॥ २ ॥

उपवनेऽप्यशृणोद्वनितासखः
सकलकोकिलकूजितमादरात् ।
मधुरिव स्मरण स्मरभूपते :
किमकरोन्मकरध्वजसारथि : ॥ ३ ॥

अर्थः—वे महाराज बाघसिंहजी अपनी प्रियतमाके साथ उपवनमें भी (बगीचेमें भी) कोकिलके ' कुहू ' रवको चाहसे सुनते थे । मानो मकरकेतन कामका सारथि बसन्त मदन नरेन्द्रको याद करता था क्या ? ।

कोकिलका कुहू रव स्वभावसे ही उद्दीपक है, वह यदि उपवनमें हो तो कहना ही क्या ? । ऐसे कुहू रवको वनितासख ही (प्राणप्रिया जिसके साथ है वह) आदरसे सुन सकता है । इस प्रकार ' वनिता सख ' विशेषण विशेष अभिप्रायगर्भित होनेसे यहां ' परिकर ' अलङ्कार है ।

कोकिलमें मदनके सारथि वसन्तकी सम्भावना की गई है, और ' किम् ' शब्दसे स्मरण क्रियामें सन्देह किया गया है, इसलिये उत्तरार्धमें ' उत्प्रेक्षा ' और ' सन्देह ' अलङ्कार हैं । वाक्योंमें पृथक् स्पष्ट प्रतीत होनेसे इनकी संसृष्टि है ॥ ३ ॥

चलदलोऽपि चलन्नवपल्लवा
धरदलेन रराज मुहुर्मुहुः ।
इति हसन्निव पान्थवधूर्मधु-
र्नवलतो यवनोऽयमुपागत : ॥ ४ ॥

अर्थ—हिलते हुए नवीनपल्लवरूप ओष्ठसे पिप्पल भी ऐसा शोभित होता था, मानो यह नवलताललित वसन्त (पिप्पलके रूपमें) पथिकोंकी वियोगिनी बहुओंको बार २ हँसता हुआ नट पूर्वक आया है । अथवा नवलताललित वसन्त मनपूरक आया है, इसलिये (मदन नरेन्द्रकी आज्ञा न माननेमें आमद

रखनेवाली) पथिकोंकी विरहिणी स्त्रियोंको (उनकी मूर्खता पर) मानो हस रहा है ।

यहां पल्लवमें ओष्ठत्वका शाब्दिक आरोप है और पिप्पलमें वसन्तके रूपका आर्थिक है, यह उत्तरार्धकी 'मानो हसता हुआ' इस उत्प्रेक्षाका सहायक है, दोनोंका अङ्गाङ्गीभावसे सङ्कर है ॥ ४ ॥

युग्मम्—

सहचरा मदनस्य वियोगिनी-
हृदयचन्दनपङ्कनवेन्धनान् ।
प्रकटयन्त इव स्मरवह्निना
स्मरमतां रमतां हृदयङ्गमाः ॥ ५ ॥

सुमनसां मकरन्दमदालसाः
सकलकामकलासु विशारदाः ।
वनभुवि स्म वहन्ति समीरणा-
विकचनीरजनीरजसोऽभिताः ॥ ६ ॥

अर्थः—विकसित कमल कुसुमोंके रजसे रँगे हुए, सकल कामकलाओंमें कुशल और कामदेवको भी जो अभिमत हैं ऐसी कामिनियोंके साथ रमण करनेवाले विलासियोंके दिलोंमें पैठ जानेवाले, मकरन्दमदसे अलसाने हुए मदनके सहचर समीर, विरहिणी रमणियोंके हृदय प्रदेश पर लगे हुए मलयचन्दनरूप नये इन्धनोंको सुलगाते हों, इस तरह वनभूमिमें बह रहे हैं ।

तात्पर्य—मकरन्दरूप मद्यके मदसे मत्त हुए वायु वियोगिनियोंके दिलोंको मुर्दे समझ कर उनको चन्दनकी लकड़ियोंमें कामाग्नि सुलगा कर जला रहे हैं और अपने मित्र मदनके निवासस्थान कामुकहृदयोंमें प्रवेश कर छिप रहे हैं ।

मदसे विवेकशून्य होकर दुःखियोंको जलानेवालेके अथवा मद्य पीना, गुलाल डालना, अनेक कामचेष्टा करना, चोक जलाना आदि वासन्तिक क्रीड़ा करनेवालेके व्यवहारका आरोप होनेसे 'समासोक्ति' है । इसमें 'सुलगाते हों' यह उत्प्रेक्षा भी है, इसलिये 'समासोक्ति' उत्प्रेक्षागर्भा है ॥ ५–६ ॥

इति जहास इव प्रभुमागतं
स्फुटितदाडिमवक्त्रविकाशनैः ।
मधुरयन्त्वरयन् किल कामिनो-
रुपवने पवने किमु दाडिमी ॥ ७ ॥

अर्थः—दाडिम द्रुमोंसे मनोहर यह वसन्त उपवन-पवनके लिये विलासी और विलासिनी दोनोंको शीघ्र प्रेरित करता हुआ खिले हुए दाडिमफलरूप मुखोंके विकाससे अपने स्वामी मदनको मानो हसता था क्या ? ।

यहा 'दाडिमफलरूप मुख' यह रूपक है, मानों हसता था क्या ? यह उत्प्रेक्षा और सन्देहका एकवाचकानुप्रवेश सङ्कर है। रूपकके साथ अङ्गाङ्गीभाव-से सङ्कर है ॥ ७ ॥

अवनिपालमुदीक्ष्य समागतं
विकचपुष्पनिपक्तमधुव्रतैः ।
कबरिकामिव गुम्फयती बभौ
धृतरसा तरसा शुचिमल्लिका ॥ ८ ॥

अर्थ—मोगरेकी सरस बेल खिले हुए फूलों पर बैठे हुए भँवरोंसे ऐसी शोभित होती थी, मानो महाराज रावसिंहजीको आये हुए देख कर (उत्कण्ठामें) झटपट वेनी गूँथ रही है। यहा 'मानो वेनी गूँथ रही है' यह 'उत्प्रेक्षा' है ॥ ८ ॥

विकचकिंशुकगुच्छमधिष्ठितं
मधुकरं स ददर्श नराधिपः ।
दलितपद्मवियोगभरादिव
स्मरचितारचितात्मविपातनम् ॥ ९ ॥

अर्थः—महाराजा रावसिंहजीने खिले हुए केसूलोंके गुच्छे पर बैठे हुए मधुप्रेमी भ्रमरको इस तरह देखा, मानो विशीर्ण हुए कमल कुसुमके वियोगकी अधिकतासे कामकी (कामरूप अग्निकी) चितामें शरीरपात कर रहा हो।

यहा भी पूर्ववत् 'उत्प्रेक्षा' है ॥ ९ ॥

हरितशाद्वलसास्तरणेव भूः
प्रथितकेकिकुलध्वनिगीतिभिः ।
मिलितमेघमहापटहध्वनै-
रुपहिताऽपहिताऽध्वरजःस्थितिः ॥ १० ॥

अर्थः—सड़कों पर धूलि नहीं थी, सड़कें साफ थीं, भूमि पर हरी कोमल घासमें मानो बिछात बिछी थी, मयूरोंकी ध्वनिका दिग्दर्शन करानेवाला संगीत हो रहा था, मेघोंसे मिलती जुलती सी मृदङ्ग बज रही थी, इस तरह उपवन-प्रदेशकी भूमि उपहिता-अर्थात् वर्षा ऋतुके गुणोंसे विभूषित होगई थी ॥ १० ॥

विकसिताम्बुजनिश्चललोचनै-
श्चलदलिस्फुरिताक्षिकनीनिकम् ।
कमलिनीव विलोकयती बभौ
धृतसदारसदारसभूपतिम् ॥ ११ ॥

अर्थः—कमलिनी जरा २ हिलते हुए भ्रमर ही जिनमें कनीनिकास्वरूप (आंखकी पुतलीके रूपमें) हैं ऐसे कमलकुसुमरूप लोचनोंमें सदा सुन्दरियों-के साथ शृङ्गार-विहारके आनन्दका आस्वाद लेते हुए महाराज चार्लिहजीको मानो देखती हो ऐसी मालूम होती थी ।

कमलकुसुमोंमें नयनोंके रूपका, भ्रमरोंमें कनीनिकाओंके रूपका शाब्दिक आरोप है और कमलिनीमें प्रारम्भिक नयनप्रीतिरूपा कामावस्थामें वर्तमान नायिकाके रूपका आर्थिक आरोप है, अत एव यहां 'रूपक' अलङ्कार एकदेश-विवर्ती है । 'मानो देखती हो' यह क्रियाकी उत्प्रेक्षा है । रूपक उत्प्रेक्षामें सहायक है, इसलिये दोनोंका अङ्गाङ्गीभावसे सङ्कर है ॥ ११ ॥

नरपतिः स ददर्श निजाङ्गना-
रुचिविलासधरामलचम्पके ।
मधुलिहामगतं स्वभयादिव
स्मरहितो रहितोऽखिलकिल्बिषात् ॥ १२ ॥

अर्थः—सुन्दरियोंके लिए मदनके समान हित होते हुए भी सब दुराचारोंसे

दूर रहनेवाले महाराजा वाघसिंहजी, अपनी मनोहारिणी प्रियतमाओंकी शरीर-शोभाको पुष्पोंमें धारण करनेवाले चम्पक वृक्ष पर भ्रमर अपने भयसे (महाराजा वाघसिंहजीके भयसे) न जाते हों, इस तरह देखते थे।

विवेचन—मधुपान (मद्यपान) उचित परिमाणमें हो तो शूरताका सहायक है और उसमे भय तो किसीको भी याद आता ही नहीं है, इतना होते हुए भी मधुप महारानियोंकी शरीर-शोभाको धारण करनेवाले चम्पक पुष्पकी ओर भी महाराजाके भयसे नहीं गए, यह प्रतापका परम उत्कर्ष है।

भ्रमरोंके चम्पक पर न जानेमें हेतुरूपसे राजभयकी संभावना की गई है, इसलिये 'हेतूत्प्रेक्षा' अलङ्कार है॥ १२॥

कुसुमितामपि चम्पकसङ्कुला-
मलिकुलं न विलोक्य ययौ चलम्।
स्ववनितामिव कामगृहागता-
मपि हितापिहितात्मगुणोदयाम्॥ १३॥

अर्थः—चपल भ्रमर चम्पक वृक्षोंका सम्बन्ध होनेसे पुष्पित लताके भी पास नहीं गये, जैसे रतिमन्दिरमें स्वयं उपस्थित हुई अपनी पत्नीके पास भी यदि उसके गुण अपने लिये हित न हो तो नहीं जाते हैं। वाच्या उपमा है॥ १३॥

पृथुनितम्वविलम्बितगामिनी-
करतलादवधूय सितोत्पलम्।
उपमुखं स निनाय वियोगिनी-
मुखनिभं खनिभङ्गुरपत्तनः॥ १४॥

अर्थ—खानके समान टेढा अर्थात् प्रारम्भमें लम्बा और मध्यमें चौड़ा ऐसा जिनके शहरका आकार है, वे महाराजा वाघसिंहजी, विपुल नितम्वबिम्बके भारसे मन्द २ चलनेवाली वनिताके हाथसे छीन कर विरहिणी रमणीके वदन-सदृश अथवा वि हँस आदि पक्षियोंके साथ-योगिनी-सम्बन्ध रखनेवाली-कमलिनी-के मुख-सदृश श्वेत कमलको (सुगन्ध लेनेकी इच्छासे यह बाह्य भावके अनुसार और सुन्दरीके लिये चुम्बनके भावको सूचित करनेके लिये यह आन्तरिक भाव-के अनुसार) अपने मुखके पास लेगये। उपमा॥ १४॥

मधुरकेकिकुलध्वनिगीतिभि-
मुखरितालसलारसपङ्क्तयः।
समय एव विभाति वचो वरं
ह्यवितथं वितथं किल संसदि ॥ १५ ॥

अर्थः—मयूरोंके मधुरध्वनिरूप गीतोंकी अपेक्षा सरोवरोंकी अधिक बोलनेवाली सारस-पङ्क्तियाँ विशेष शोभा पाने लगीं, क्योंकि सभामें कहा गया वचन सत्य हो या असत्य, समय पर ही शोभा पाता है।

विशेषका उत्तरार्धमें कहे गये सामान्यसे समर्थन हुआ है, इसलिये अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ॥ १५ ॥

दलितपाटलसूक्ष्मरजोहरा
अपि जलाशयपातलविन्दवः।
इति भियेव शनैर्मरुतश्चर-
न्त्युपमहीशमहीशमुखादिव ॥ १६ ॥

अर्थः—खिले हुए गुलाबके पुष्पोंके सूक्ष्म पराग परमाणुओंको हरण करनेवाले और जलाशयोंमें गिरनेके कारण जलविन्दुओंसे संस्पृष्ट वायु मानो नागराजके मुखके समान महाराज वाघसिंहजीके भयसे उनके समीपमें धीरे २ बहने लगे, अर्थात् शीतल मन्द सुगन्ध पवन बहने लगे।

विशेष विवेचन—गुलाबके फूलोंका सूक्ष्म पराग चुरा लिया और जड़ाशयोंके (मूर्खोंके) साथ सम्बन्ध करनेसे छींटे भी लगे, अर्थात् कलङ्क लगा। अथवा परागको चुरा कर भयसे भागते हुए जलाशयमें गिर पड़े, जिसके चिह्नस्वरूप विन्दु शरीर पर लगे हुए हैं, जिनके देखने पर चोरी बड़ी आसानीसे पकड़ी जा सकती है, अत एव दुष्टोंको दण्ड देनेवाले महाराजा साहिब वाघसिंहजीसे इनको भय हुआ है।

नागराज स्वभावसे ही वायुभोगी है, फिर भी यदि ऐसा उत्तम वायु मिले तो पेटमें रखनेकी जरा भी देर न करेगा, इसलिये उससे भय होना भी ठीक है।

पवनके मन्द चलनेमें हेतुरूपसे महाराजा साहिबके भयकी सभावना की गई है, इसलिये ' हेतूत्प्रेक्षा ' है । इसके पेटमे ' नागराजके मुखके समान ' यह उपमा है, इसलिये उत्प्रेक्षा उपमागर्भा है । अस्पष्ट होनेसे ' (समासोक्ति) अलङ्कार व्यङ्ग्य है ॥ १६ ॥

मृगदृशा मृगनाभिजसङ्कुलै-
घनपटीररसैर्मृजितोरसा ।
कुचयुग परिपीड्य स सस्वजे
स्मरतया रतयाचितभूपति : ॥ १७ ॥

अर्थः—कामभावके कारण रतिके लिये जिनकी स्वय याचना की गई है, ऐसे महाराजा बाघसिंहजी कर्पूरकस्तूरीमिश्रित चन्दनद्रवोंसे परिमार्जित वक्ष स्थल वाली मृगलोचनाका स्तनपीडनपूर्वक आलिङ्गन करने लगे ॥ १७ ॥

समवलोक्य कुचद्वयशम्भुतां
करयुगेन स काम इवाग्रहीत् ।
तमपि तौ मदन व सकण्टकौ
विततकामुकताऽमुकताभ्रमात् ॥ १८ ॥

अर्थः—महाराजा बाघसिंहजीने दोनों कुचोंको शङ्कररूप देख कर मदनके समान उनको दोनों करकमलोंसे ग्रहण कर लिया, उन दोनों कुचोंने भी कामुकताकी अधिकताके कारण महाराजा साहिबको भ्रमसे मदन जान कर कण्टकोंको (रोमाञ्च दूसरे पक्षमें शस्त्र) साथ लिये हुए, मदन पर आक्रमण करते हों इस तरह आक्रमण किया ।

पूर्वार्धमें ' रूपकगर्भा उपमा ' है और उत्तरार्धमें 'भ्रान्तिमद्गर्भा उपमा' है । दोनोंकी तिलतण्डुलवत् समृष्टि है ॥ १८ ॥

स न बभञ्ज धनूंपि महीपतौ
कति शरान् कुसुमेपुरनाकुल ।
प्रतिमुमोच जगत्त्रयगर्वित :
सुरमणी रमणीमयमायुधम् ॥ १९ ॥

अर्थः—उस स्थिरहृदय अमरमणी मदनने महाराजा बाघसिंहजीके विषयमें कितने धनुर्बाण न तोड़े, अर्थात् किसीका भी निशाना न लगा। तब अन्तमें मेरे इस आयुधने जगत्का जय किया है ऐसे गर्वसे महाराजा बाघ-सिंहजी पर रमणीमय (स्त्रीमय) आयुध छोड़ा ॥ १९ ॥

कुसुममालिकया क्षितिपः स का-
मपि जघान समुन्नतवक्षसि।
कुचसमुन्नतशम्भुरिवार्चितो
रुरुचिरे रुचिरेक्षणयोषितः ॥ २० ॥

अर्थः—महाराजा साहिबने किसी सुन्दरीके उन्नत वक्षःस्थल पर जो पुष्पमालाका प्रक्षेप किया था, वह मानो स्तनरूप शङ्करका पूजन किया था, इससे सभी मनोहर नयनवाली सुन्दरियां प्रसन्न हुई।

विशेष—राजरमणियोंके नयन स्वभावसे ही सुन्दर हैं, इतने पर भी मालाप्रक्षेपसे महाराजा साहिबका अनुराग मालूम होने पर जो हृदयका भाव बदला, उससे चेष्टापरिपूर्ण बन कर और भी सुन्दर होगये हैं।

कुचों पर मालाप्रक्षेप करनेमें शम्भुपूजनके तादात्म्यकी सम्भावना की गई है, इसलिये वाच्या क्रियोत्प्रेक्षा है, कुचमें शम्भुके रूपका आरोप होनेसे रूपक-गर्भा है ॥ २० ॥

प्रमदकाननमध्यजलाशयं
प्रतिनिनाय निदाघ ऋतौ विभुम्।
जलवगाहकृते रतिखेदितं
स मदनो मदनोपमसुन्दरम् ॥ २१ ॥

अर्थः—वह मदनदेव ग्रीष्म ऋतुमें सुरतलीलासे परिश्रान्त हुए अपने समान मनोहर महाराजा साहिबको जलक्रीड़ाके लिये प्रमदवनके जलाशयमें ले गया ॥ २१ ॥

घनकुचस्नपनैर्लहरीजलैः
सुरतखेदभृतो जघनस्थलीः।

परिमृज्य सुशीतजलै सर
सजलजैर्जलजैस्तमसेवत ॥ २२ ॥

अर्थः—लहरियोंसे ऊपर उठता हुआ जिसका जल सुन्दरियोंके स्तन पर्यन्त पहुँच रहा है, वह प्रमदवनका जलाशय, सुरतके परिश्रमसे खिन्न हुए कटिके अग्रभागका अत्यन्त शीतल जलसे प्रक्षालन करता हुआ पुष्पित कमलों-से महाराजा साहिबकी सेवा करने लगा ॥ २२ ॥

करतलाहतवारि समुत्क्षिप-
न्दयितमध्यगतो ललनागणः।
पृथुघनस्तननर्तनलोलदृग्
विहरते हरते च मनोऽन्तरे ॥ २३ ॥

अर्थः—मध्यमे प्रियतम महाराजा साहिब हैं और आस पास विशाल तथा मिले हुए परस्परके स्तनोंके हिलेको चाहभरी निगाहसे देखती हुई सुन्दरिया हाथोंसे जल उछाल २ कर खेल रही हैं, मानो देखनेवालेके दिल-को हर रही हैं। अथवा केशपाशोंमेंसे जल झरनेके कारण ऐसी मालूम होती हैं कि जिनकी जटामेंसे गङ्गा प्रवाहित हो रही है ऐसे एकादश रुद्र हैं।

विशेष—सुन्दरिया परस्परके स्तन हिलनेकी ओर जो देख रही हैं, वह मानो स्तनोंका हिलना दिलके चलित होनेका अनुमान कराता है, इस आशयसे है, और जलको हाथोंसे उछालना ' हे दिल ' ऊपर उठ कर हमारे पास आजा' इस आशयसे है। अत एव यह विहार क्या है मानो परस्परके भी दिल हरण करनेकी चेष्टा है। यदि कविका भाव ऐसा हो तो यहाँ ' उत्प्रेक्षा ' अलङ्कार है और दूसरे अर्थमें उपमा अलङ्कार है ॥ २३ ॥

स्वतनुजातजलप्रतिबिम्बितै-
रहिवधूभिरिवाशु विलोकितः।
स शुशुभे विलसन् ललनागणः
सरसि कं रसिकं न विलोभयन् ॥ २४ ॥

अर्थः—सरोवरमें सभी रसिकोंके दिलको लुभाता हुआ यह सुन्दरी-

माज जलमें प्रतिबिम्बित हुए अपने शरीरोंकी प्रतिच्छायाओंसे ऐसा शोभा
ता था, मानो (रसातलसे शीघ्र आकर) नागपत्नियाँ उसे देख रही हों ।

विवेचन—महाराजा साहिबके प्रियावर्गका सौन्दर्य इतना उत्तम था कि
सा नागलोकमें भी नहीं था, इसीसे नागपत्नियोंमें भी उसके देखनेकी उत्कण्ठा
म्भावित हुई । अलङ्कार वाच्या उत्प्रेक्षा है ॥ २४ ॥

निजमुखोष्ठदृशां प्रतिबिम्बितं
पयसि कापि विलोक्य दधौ रयात् ।
कमलविद्रुममीनयुगभ्रमा-
द्धसितं हसितं किल कुर्वती ॥ २५ ॥

अर्थः—कोई सुन्दरी एकान्तमें अपने मुख, ओष्ठ और नयनोंके प्रतिबिम्ब-
ो जलमें देख कर उनमें कमल विद्रुम (मूँगा) और मछलियोंका भ्रम होनेसे
हाराजा साहिबको हसाती हुई शीघ्रतासे उनको पकड़ने चली ।

यहाँ ' भ्रान्तिमान् ' अलङ्कार है ॥ २५ ॥

अधिगतः सविता किल वारुणी-
मधिपयोधि पतन् गलिताम्बरः ।
दशशतस्वकरैरवलम्बय-
न्निपतितः पतितोऽस्तमुपाययौ ॥ २६ ॥

अर्थः—पश्चिम दिशामें जाकर आकाशसे समुद्रमें उतरता हुआ सूर्य
अपनी दस हजार किरणोंसे सहारा लेता हुआ भी गिरता २ अस्त होगया ।

यहां ' वारुणी ' ' अम्बर ' ' कर ' इन शब्दोंके मदिरा, वस्त्र और हस्त
ये अर्थ भी हैं, इसलिये महाराजा साहिब मदिरापान करके, पहिने हुए कपड़े
इधर उधर गिर रहे हैं, हजारों नोकर चाकर हाथका सहारा दे रहे हैं, इस तरह
गिरते २ महलोंमें गये, यह अर्थ गूढ रीतिसे सूचित होता है । यह अर्थ भी
प्रस्तुत है, क्योंकि प्रथमसे महाराजा साहिबके क्रीडाका वर्णन चल रहा है,
अत एव यहाँ ' समासोक्ति अलङ्कार नहीं, किन्तु ' प्रस्तुताङ्कुर ' अलङ्कार
है ॥ २६ ॥

रो रहे हैं, कामकी स्फुरणा हो रही है; सब घटना बढ़ना समयके अधीन है।

सामान्यसे विशेषका समर्थन होनेसे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ॥ २८ ॥

स्फटिकयन्त्र इवामरकन्यका-
भिमिषपुष्पसमूहसमर्चितः ।
विजयते विधुरेष विभासयन्
कुमुदिनीं मुदि नीरजनिं शुचिः ॥ २९ ॥

अर्थः—नक्षत्रोंके बहाने अपने अपने स्वरूपको प्रकट करते हुए पुष्पोंसे जिसकी देवकन्याओंने पूजा की है ऐसा स्फाटिक मणिका बना हुआ मानो गोलाकार पूजनयन्त्र हो, ऐसा यह स्वच्छ चन्द्र कुमुदिनीको आनन्दमें मज्जित करता हुआ अद्भुत शोभा पारहा है।

यहां नक्षत्रोंका खास रूप छिपा कर उनको पुष्पोंका रूप दिया गया है, इसलिये 'अपह्नुति' है 'मानो यन्त्र हो' यह उत्प्रेक्षा है, मिल कर अपह्नुति-गर्भा उत्प्रेक्षा है ॥ २९ ॥

विहरते रजनीकरकार्मणी
करलसद्वशकज्जलपेटिकः ।
वियति दूरगपान्थजनस्य य-
द्विकलयन्कलयन्त्रवतीर्वधूः ॥ ३० ॥

अर्थः—यह 'चन्द्र' नामक टोना करने वाला आकाशमें विहार कर रहा है, इसके हाथमें वश करनेके काजलकी पेटी है (जोकि कलङ्करूपसे प्रसिद्ध है) और दूर गये पथिकोंकी कलयन्त्रवती (जिनके हाथमें वीणा हैं) वनिताओंको विकल कर रहा है।

यहां चन्द्रमें टोना करनेवालेके रूपका आरोप होनेसे 'रूपक' है, सकल-यन्त्र वनिताओंको विकल कर रहा है, इसलिये कुछ विरोधाभासकी छाया भी है ॥ ३० ॥

उन्नन्निर्मलमेदपाटविलसद्वंशैकचूडामणि-
श्रीमन्माधवभट्टसूरितनयो दिक्चक्रविख्यातधीः ।

गङ्गाराममहाकविर्व्यरचयत्काव्यं सुधासोदरं
तस्मिञ्छ्रीहरिभूषणे सुचरिते सर्गश्चतुर्थोऽगमत् ॥ ३१ ॥

अर्थः—अर्थ पूर्वोक्त है ॥ ३१ ॥

इति श्रीहरिभूषणे महाकाव्ये कविश्रीगङ्गारामकृतौ
ऋतुवर्णनो नाम चतुर्थः सर्गः ।

महाकवि गङ्गाराम कृत श्रीहरिभूषण महाकाव्यमे चतुर्थ सर्ग पूर्ण हुआ ।

पञ्चमः सर्गः ।

प्राहिणोत्स किल पत्रिकामसु,
कामकेलिरसलीनमानसम् ।
पातसाहमितराखुधर्षिणं
वीक्ष्य कोपिनमथो बहाधुरम् ॥ १ ॥

अर्थः—महाराणा विक्रमादित्यन कुपित हुए बहादुरशाहको और किसीसे दबनेवाला न देख कर कामक्रीडामे लीन रहनेवाल वाघासिंहजीके पास चिट्ठी भेजी ।

इस सर्गमें युद्धयात्राका वर्णन है, इसलिये छन्द भी इसके अनुकुल रथोद्धता रक्खा है ।

नालसी भवितुमर्हसि क्षणं
दृष्टपत्र इह तज्जल पिब ।
दूरदेशमधितिष्ठता जनो
जन्मभूव्यसनिता सहेत कः ॥ २ ॥

अर्थः—(उसमें लिखा था कि) आप क्षण भर भी आलस्य न करे, पत्र देखते ही जल यहा (आकर) ग्रहण करे, मनुष्य दूर देशमें निवास करे, परन्तु अपनी जन्मभूमिकी विपत्तिको कौन सहन करेगा ? ॥ २ ॥

वीक्ष्य पत्रमथ निर्गतो विभु-
स्त्यक्तकेलिकुपिताप्रसादनः ।

सङ्गराजिरविहारकेसरी
किं सहेत युधि वाघजी रिपून् ॥ ३ ॥

अर्थः—महाराज वाघसिंहजी पत्र देखते ही, रति-विहारमें कुपित हुई कामिनियोंको मनाना छोड़ कर (चित्तोड़के लिये) रवाना होगये, क्योंकि आप संग्राम-भूमिकी क्रीड़ामें सिंह थे, आप क्या शत्रुओंको सहन करें ? ॥ ३ ॥

चित्रकूटमभिरक्षितुं महा-
मेदपाटतिलको विभुः स्वयम् ।
स्वातपत्रमपि सन्ददौ रणे
वाघजीवधरणीधवाय सः ॥ ४ ॥

अर्थः—मेदपाटेश्वरने चित्रकूटकी रक्षाके लिये, अपना छत्र भी युद्धमें महाराजा वाघसिंहजीको देदिया ॥ ४ ॥

चित्रकूटपरिरक्षणोत्सुकः
स्वीयमूर्धनि मुधे स धारयन् ।
आतपत्रमरितापनं प्रभो-
र्मेदपाटधरणीभृतो महान् ॥ ५ ॥

अर्थः—महाराजाने चित्रकूटके रक्षणमें उत्कण्ठा रखते हुए शत्रुओंको तपानेवाले मेदपाटेश्वरके छत्रको अपने मस्तक पर धारण किया ॥ ५ ॥

यो बहाधुरमहीभृता स्वयं
संप्रयोध युधि वाघरावतः ।
नाकरोत्किमु स पाकशासनी-
रीतिभाजनमनन्यशासनः ॥ ६ ॥

अर्थः—जो युद्धमें स्वयं बहादुरशाहके साथ लड़े, उन अद्वितीय शासन-पद्धतिवाले महारावतजी वाघसिंहजीने अपने आत्माको इन्द्रकी शौर्यपूर्ण पद्धति-का पात्र क्या नहीं बनाया ?, किन्तु अवश्य ही बनाया । तात्पर्य यह कि इन्द्रने जैसे पाक-नामक दैत्यके साथ युद्ध किया था, इस तरह महारावतजी वाघसिंहजी-ने बहादुरशाहके साथ युद्ध किया ।

यहां पदार्थवृत्ति 'निदर्शना' अलङ्कार है ॥ ६ ॥

> कुन्तबाणपरशुकृपाणिका-
> प्रासलोष्टलगुडैः परस्परम् ।
> सङ्गरः समभवद्भृशं तयोः
> क्षत्रसम्पदमहीभृतोस्ततः ॥ ७ ॥

अर्थः—महारावलजी पार्थसिंहजी और बहादुरशाह इन दोनोंके परस्पर भाले, बाण, कृपाण, प्रास, फरसे, पत्थर और लाठी इन सब शस्त्रोंसे घोर संग्राम होने लगा ॥ ७ ॥

> मुद्गला गलदसृक्प्रवाहका
> रेजुराजिभुवि ये निपातिताः ।
> रामरावणरणाङ्कणे
> स्मारयन्त इह भिन्नराक्षसम् ॥ ८ ॥

अर्थ—कण्ठमेंसे जिनके रुधिरका प्रवाह बह रहा है ऐसे, जो मुगल, संग्राम-भूमिमें गिराये गये थे, वे, छिन्न भिन्न राक्षसशरीर जिसमें पड़े हुए हैं, ऐसे रामरावण युद्धकी याद दिलाते हों, इस तरह शोभित होते थे। स्मरणालङ्कार है ॥ ८ ॥

> उज्जकानिह विलोक्य सङ्गरे
> वर्मधारणनिकृत्तमस्तकान् ।
> राहुकेतुजनितैर्भयै रवि-
> र्धूलिदुर्गमिव संविशन् बभौ ॥ ९ ॥

अर्थ.—युद्धमें लड़के बख्तर पहिने हुए सिर कटे उज्जकोंको (मुगल खानदानके बहादुरोंको) देख कर राहु केतु प्रभाके भयसे (उनको भ्रमसे राहु केतु जान कर उनके भयसे) सूर्य धूलिमय दुर्गमें प्रवेश करता हो इस तरह शोभा पाने लगा। उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ९ ॥

> सन्निकाश्य समरे कृपाणिका
> कोऽप्यधावत युधि द्रुतं रयात् ।

मुद्गलः कृतशिरोऽवमुण्डनः
क्वापि लीन इव लक्षितो जनैः ॥ १० ॥

अर्थः—युद्धमे कोई मुंडे सिरका मुगल तलवार निकाल कर क्रोधमे वेगके साथ दौड़ा, उसे लोगोंने कहीं लीन (छिप) होगया हो इस तरह देखा ॥ १० ॥

सङ्गरे शरशतैः परे भृशं
केऽपि कुन्तफलकैर्विजघ्निरे ।
खड्गपातनिकरैस्तथेतरे
राणबाधुरभटाः परस्परम् ॥ ११ ॥

अर्थः—महाराणा और बहादुरशाहके सैनिकोंमें कोई सैनिक सैकड़ों बाणों-से कोई भालोंसे और कोई खाँडोंसे परस्पर मारे जाने लगे ॥ ११ ॥

हब्सिनो विदलिताः परश्वधैः
पेतुराजिभुवि तत्र वर्मिणः ।
हा खुदाय इति भाषिणोऽभितो
बाघरावतकृपाणभङ्गुराः ॥ १२ ॥

अर्थः—फरसोंसे मारे गये कवचधारी हब्सी लोग वहां युद्धभूमिमें गिरने लगे। कई 'या खुदा' इस तरह पुकारते हुए महारावतजी बाघसिंहजीके तलवारकी चोटसे मारे गये ॥ १२ ॥

तन्निशम्य वचनं बहाधुरो
देहि देहि समरे नगारकान् ।
यावनं तुरगमाश्रयन्ययौ
बाघरावतविलोकनाय सः ॥ १३ ॥

अर्थः—उस बहादुरशाहने यह सुन कर नगाड़े बजानेके लिये कहा और यवन देशके (ताजी) घोड़े पर चढ़ कर महारावतजी श्रीबाघसिंहजीको देखने-के लिये चला ॥ १३ ॥

एष एव किमु तत्सहोदरः
सातपत्र इह राजते यतः।
बाघराघनमम् रणाङ्गणे
विद्धि देवगिरिनाथमागतम् ॥ १४ ॥

अर्थः—(बहादुरशाह बोला) क्या महाराणाका भाई बाघसिंह यही है, क्योंकि इसके सिर पर छत्र शोभित है। (उत्तरमें निवेदन किया) युद्धभूमिमें आये हुए ये देवगिरिके स्वामी रावत बाघसिंह हैं॥ १४॥

चित्रकूटनृपतेरयं भट-
स्तादृशो न भुवि वर्ततेऽधुना।
यो बहादुरमम् रणे स्वयं
तूलपुञ्जमिव मा प्रधर्षति ॥ १५ ॥

अर्थः—ये महाराणा चित्रकूटेश्वरकी ओरसे लड़नेके लिये आये हैं। (बहादुरशाह बोला) इस समय पृथ्वी पर वैसा योद्धा कोई नहीं है, जो स्वयं युद्धमें मुझ बहादुरशाहको रुईके ढेरकी तरह दबादे। उपमा अलङ्कार है॥ १५॥

तत्र वेगवशतो महाभटान्
प्रेरयञ्जयकृते स वर्मिणः।
मेघसङ्घमिव मेघवाहनो
राजते स्म सततं बहादुरः ॥ १६ ॥

अर्थः—(इतना कह कर) वहां युद्धभूमिमें वेगके साथ कवचधारी बड़े २ सैनिकोंको पवन जैसे बादलोंके दलको प्रेरित करता है, इस तरह विजयके लिये प्रेरित करता हुआ वह बहादुरशाह बहुत ही अच्छा शोभित हुआ। उपमा अलङ्कार है॥ १६॥

ते पठाणकटकानुवर्तिन-
स्तीक्ष्णशस्त्रविशिखैर्नृपताडयन्।
बाघराजनृपा अपि क्रुधा
तानकोपयिरशान मन्दरं ॥ १७ ॥

अर्थः—वे पठाण-सेनाके अनुचर तीखे भाले और बाणोंसे प्रहार करने लगे। महारावतजी बाघसिंहजीके बाणप्रयोगनिपुण सैनिक भी कोपसे विवश हुए (बहादुरशाहके) सैनिकोंको गुस्सेसे मारने लगे ॥ १७ ॥

तादृशं समभवद्रणं तयो-
र्वीतरागमुनिरप्यभूद्रणी ।
भूरकम्पयत भूधरैर्युता
शेषराडपि विशीर्णमस्तकः ॥ १८ ॥

अर्थः—उन दोनोंका ऐसा घोर युद्ध होने लगा कि वीतराग मुनि भी उस रणका अभिलाषी होगया और पर्वतसहित पृथ्वी काँपने लगी, भारसे शेषनागका मस्तक भी विशीर्ण होगया। अत्युक्ति अलङ्कार है ॥ १८ ॥

ते ववर्षुरिह बाणवृष्टिभि-
र्मुद्गलाः क्षतजरक्तकङ्कटाः ।
नीरदा इव सुनीरवर्षिणो
लोहकञ्चुकभृतो नखाशिखम् ॥ १९ ॥

अर्थः—नख-शिखान्त लोहेके कवच पहिने हुए और रुधिरसे जिनके कवच लाल होगये है ऐसे मुगल, मेघ जल वरस रहे हों इस तरह यहां युद्धमें बाणोंकी वृष्टि करने लगे। उपमा ॥ १९ ॥

बाघरावतमहीपतेः पुरः
पातसाहकटकं पलायितम् ।
तूलराशिरिव मारुतस्य त-
च्चित्रकूटनृपतेर्जयोऽभवत् ॥ २० ॥

अर्थः—हवाके सामने जैसे रुईका ढेर उड़ जाता है, इस तरह महारावतजी बाघसिंहजीके सामने बहादुरशाहकी सेना भाग गई और चित्रकूटेश्वर महाराणाकी विजय होगई। उपमा अलङ्कार ॥ २० ॥

बाघरावतमहीपतेः सुतो
रायसिंह इति सूनुरग्रणीः ।

नीतिशास्त्रकुशलोऽभवन्महा
सुन्दरः स्मर इव प्रतापवान् ॥ २१ ॥

अर्थ—महारावतजी बाघसिंहजीके बडे पुत्र रायसिंहजी हुए, जो नीति-निपुण प्रतापशाली और कामदेवके समान सुन्दर थे। अलङ्कार पूर्ववत् ॥ २१ ॥

वेदशास्त्रनिरता द्विजातयो
जातयोऽपि न ययुर्विकारिताम्।
रायसिंहनृपतौ धरातलं
शासति स्वयमहो सदाऽनघे ॥ २२ ॥

अर्थः—सदा दोषोंसे दूर रहनेवाले महारावतजी रायसिंहजी जब इस भूमिका शासन करते थे, उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये त्रैवर्णिक वेदके पठन पाठनमें तत्पर रहते थे, अन्य जातियाँ भी अपने २ स्वरूपमें थी, विकार नहीं हुआ था ॥ २२ ॥

नर्तयंस्तुरगराजिमग्रतो
योऽगजानपि गजान्नियोधयन्।
वासरानिति निनाय भूपति-
र्दानमानकुशलः कवीश्वरे ॥ २३ ॥

अर्थः—कवियोंके लिये दान देनेमें और उनका सम्मान करनेमें परम निपुण महारावतजी रायसिंहजीने कभी अपने आगे घोड़ोंको नचाते हुए कभी जङ्गली हाथिओंसे भी लडाते हुए दिन व्यतीत किये ॥ २३ ॥

वैरिवीरवनिताकुचान्तरे
स्वेददुर्घनपटीरकर्दमम्।
साध्वसानलशिखाप्रतापिते
यन्निशम्य भिलितारिसूदनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जिनको (महारावतजी रायसिंहजीको) सामना करनेवाले शत्रुओंके मारक सुनकर भयरूप अग्निकी ज्वालामें सन्तापित किये गये वीर वैरियोंकी स्त्रियोंके स्तन-मध्य भागमें पसीनेसे चन्दन आर्द्र होकर कर्दम रूपमें परिणत

होगया था ॥ २४ ॥

येन भूतलमिदं महीभृता
सर्वतो गतदरिद्रलेशकम् ।
पूरितं सकलद्रव्यसम्पदा
स्वर्गपत्तनमिव व्यशोभत ॥ २५ ॥

अर्थः—जिन महाराजा साहिबसे यह धरातल सर्व दारिद्र्य रहित और समस्त सम्पत्ति परिपूर्ण बनकर स्वर्ग-नगरी अमरावतीकी तरह शोभा पाता था उदात्त अलङ्कार है ॥ २५ ॥

वाटिकाः कति महीभृता स्वयं
कारिताः कति सरोवराण्यपि ।
धर्मराज इव भूतले बभौ
याचमानजनदानतत्परः ॥ २६ ॥

अर्थः—महाराजा साहिबने कई बगीचे और कई सरोवर बनवाये थे । आप याचक जनोंको दान देनेमें सदा तत्पर रहते हुए इस भूमण्डल पर धर्मराज-की तरह शोभा पाते थे ॥ २६ ॥

यः कवीश्वरसभावशम्वदो
लोकलोचनसुखाकरो बभौ ।
न्यूनदानमपि लक्षसंख्यया
येन दत्तमिह भूतले सदा ॥ २७ ॥

अर्थः—जो बड़े २ कवियोंकी सभामें सदा अनुरक्त रहते थे, (सौन्दर्यसे) लोगोंके नेत्रोंको बड़ा आनन्द देते थे । जिन्होंने कमसे कम इस भूमण्डल पर एक लाखका दान दिया था ॥ २७ ॥

चारणैरतितरां निषेवितः
संस्तुतः कविजनैः समन्ततः ।
रञ्जयन्निजगुणैः कवीश्वरान्
भासमान इह भानुवद्बभौ ॥ २८ ॥

अर्थ —उन महाराजा साहिब रायसिंहजीकी चारण सदा सेवा करते रहते थे। कवि जन सब तरह आपकी स्तुति करते थे, आपने अपने गुणोंसे बडे २ कवियोंका सन्तोष सम्पादन किया था, आप अपने मूल पुरुष सूर्यके समान शोभाशाली थे ॥ २८ ॥

उद्यन्निर्मलमेदपाटविलसद्भूशैकचूडामणि-
श्रीमन्माधवभट्टसूरितनयो दिक्चक्रविख्यातधीः।
गङ्गाराममहाकविर्व्यरचयत्काव्यं सुधासोदरं
तस्मिञ्छ्रीहरिभूषणे सुचरिते सर्गोऽगमत्पञ्चमः ॥ २९॥

अर्थ —अर्थ पूर्वोक्त ही है॥ २९ ॥

इति श्रीहरिभूषणे महाकाव्ये कवि-श्रीगङ्गारामकृतौ वहादुरपराजयो नाम पञ्चमः सर्गः।

महाकवि गङ्गाराम विरचित श्रीहरिभूषण महाकाव्यमें पञ्चम सर्ग पूर्ण हुआ।

षष्ठ सर्गः।

अभूदथ क्षत्रकुलाभिमानी
बीकाभिधेयः किल तस्य सूनुः।
यत्खड्गधाराऽभिहतोऽरिवर्गो
महीतटे खेलति भूतवर्गे ॥ १ ॥

अर्थः—उन महारावतजी श्रीरायसिंहजीके पुत्र क्षत्रिय कुलका अभिमान रखनेवाले बीकाजी थे, जिनकी खड्गधारासे मारे गये शत्रु मही नदीके तट पर भूतोंसे खेल रहे हैं। युद्धमें मारे गये मुक्त न होकर भूत होगये, इससे यह सिद्ध होता है कि महाराजा साहिबसे वैर करके इस जन्ममें तो दुःख पाते ही थे, परन्तु मरनेके बाद भी सत्पुरुष द्वेषके पातकसे भूत होना पड़ता था, अर्थात महाराजा साहिब कपिलदेव जैसे महापुरुष थे, जिनके साथ अनुचित व्यवहार होनेसे शत्रुओंको असद्गति मिलती थी।

वक्तव्य रूपान्तरसे कहा है, इसलिये पर्यायोक्त अलङ्कार है, इस सर्गमें उपजाति छन्द है ॥ १ ॥

अद्यापि पाषाणविचित्रिताभिः
सतीभिराभान्ति महीतटान्ताः ।
यदीयकौक्षेयकधारया रवा-
रदापुष्पवन्तौ रमणानुगाभिः ॥ २ ॥

अर्थः—जिनकी खड्गधाराके प्रभावसे सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल पर्यन्त ७.पंन २ प्राणनाथका अनुगमन करनेवाली सतियोंकी पाषाणमें खुदी हुई मूर्तियों से मही नदीके तट इस समय भी शोभित होरहे हैं ॥ २ ॥

पुराऽऽसकर्णः किल रावलोऽभू-
त्प्रतापसिंहं नयुयोध यत्र ।
वंशालयाधीश्वरधर्मबन्धुः
समागतो दैवगिरेर्महीशः ॥ ३ ॥

अर्थः—पहिले (डूंगरपुरमें) रावल आसकर्ण हुए थे, जो (बांसवड़े वाले) प्रतापसिंहजीके साथ लड़े थे और जिस युद्धमें देवलियाके महारावतजी श्री-बीकाजी (विक्रमसिंहजी) बांसवाड़ेके महाराजा प्रतापसिंहजीके धर्मभ्राता बन-कर गये थे ॥ ३ ॥

महाहवं तत्र तयोर्बभूव
महीतटेषु प्रसभं समेषु ।
परस्परं प्रासफलैः प्रजघ्नु-
श्चौहानभूपा रणगीतगीताः ॥ ४ ॥

अर्थः—मही नदीके तीरकी उस समतल भूमिमें उन दोनोंका बड़े जोरोंसे घोर युद्ध हुआ था, जहां चौहानवंशीय राजा रणके गीत गाते हुए परस्पर भाले मार लड़े थे ॥ ४ ॥

समुच्छलत्कच्छतुरङ्गमस्थः
स्फुरत्स्फुलिङ्गावलिखड्गघातैः ।
छुब्यत्तनुत्रान् लसदश्ववारान्
रणेऽरिवीरानकरोत्स बीकः ॥ ५ ॥

अर्थ—महारावतजी श्रीविक्रमसिंहजी कूदनेमें कमाल दिखानेवाले काठियावाड़ी घोडे पर बैठ कर जिनमेंसे असंख्य चिनगारियाँ झररही हैं, ऐसी तलवारोंकी चोटोंसे बैरी वीरोंको, घुडसवार जिनमेंसे चल निकले हैं और कवच जिनके टूट गये हैं, ऐसे करने लगे ॥ ५ ॥

उद्धृत्य खड्गान् रणरङ्गधीरा
सक्रन्दनैरुच्चतुरङ्गसस्था: ।
आकारयन्त किल वैरिवीरा-
न्मां मा त्वमादाविति वल्गयन्त: ॥ ६ ॥

अर्थ—बडे २ घोडोंपर बैठे हुए युद्धकी खुशीमें मस्त वीर ऊँचेसे पुकार कर वीर वैरियोंको बुलाते हुए खाडे ऊपर उठा कर पहिले तुम मुझेर (मारो), इस तरह वीरता प्रगट कर रहे थे। स्वभावोक्ति अलङ्कार है ॥ ६ ॥

भिन्ना पतन्त: करवालिकाभि:
समुच्छलद्रक्तचलत्प्रवाहा ।
चौहान-वेहोलगणा रणेऽस्मि-
न्नन्योन्यमेषा घटित प्रचक्रु ॥ ७ ॥

अर्थ—योद्धा तलवारसे कट कर गिरने लगे और उछल २ कर रक्तका प्रवाह इनमेंसे निकलने लगा, तथा इनके सिर और धडोंको चौहान वेहोल राजपूत परस्पर इकट्ठा करने लगे ॥ ७ ॥

रणेऽरिभूपास्तुरगा विनेशु-
र्मदोन्मदा मन्दरकुञ्जराश्च ।
वीकाभुजादण्डलसत्कृपाणी-
करालधाराजलमापिबन्त: ॥ ८ ॥

अर्थ—युद्धमें शत्रुपक्षीय राजा, घोड़े और मदोन्मत्त पर्वताकार हस्ती महारावतजी वीकाजीके भुजदण्डमें शोभित होनेवाली तलवारके विकराल धारा-रूप जलको पीते हुए नष्ट होगये। अन्तिम समयमें जब कण्ठ अवरुद्ध होने लगता है तो जल पीनेकी आवश्यकता होती है, इस आवश्यकताकी पूर्ति यहाँ तलवारकी धाराने की है, इस तरह धारा जलरूपमें परिणत होनेसे 'परिणाम' अलङ्कार है ॥ ८ ॥

विच्छिन्नहस्ता युधि हीनमस्ता-
विक्षिप्तकेशा विकरालवेषाः।
वीकानरेन्द्रेण घनारिवर्गाः
स्वर्गावनीस्थाः सुचिरं कृतास्ते ॥ ९ ॥

अर्थः—हाथ कट गये हैं, सिर कट गये हैं, केश बिखरे हुए हैं वेष विकराल हैं, (इस तरह दुर्दशाग्रस्त करके) सभी शत्रुओंको महारावतजी बीकाजीने युद्धभूमिमें चिर कालके लिये स्वर्गगामी कर दिया। यहाँ 'हस्ताः' 'मस्ताः' और 'केशाः' 'वेशाः' यह अन्त्यानुप्रास है॥ ९ ॥

अनेकवीरैरभितः परीतो
रराज वीकापतिराहवेऽस्मिन्।
रुद्धो गजैः सिंह इवासहायः
प्रचण्डकोपो मदमत्तचित्तैः॥ १० ॥

अर्थः—अनेक वैरी वीरोंके द्वारा चारों ओरसे घेरे गये महारावतजी बीकाजी ऐसे शोभित हुए थे, जैसे अनेक मदमत्तचित्त हस्तियोंसे घिरा हुआ प्रचण्डकोपशाली एकाकी सिंह हो। उपमा है॥ १० ॥

असृङ्-नदीपूरचलत्प्रवाहै-
रजोभिरापूर्णदिगन्तराला।
रराज भूमिः किल सङ्गरस्य
सन्ध्येव मेघान्तरितान्तरिक्षा॥ ११ ॥

अर्थः—धूलिसे सब दिशाओंका मध्य भाग आच्छादित होने पर रुधिर-मयी नदीके पूर आये हुए प्रवाहसे युद्धकी भूमि मेघमण्डित आकाश वाली सन्ध्याके समान शोभा पाने लगी। उपमा अलङ्कार है॥ ११ ॥

तीरेषु मग्नाः पतिताः कबन्धा-
भीमा विरेजुः करवालहस्ताः।
सुखं शयानाः किल नीरमध्या-
द्विनिर्गता मद्गुरबालकाः किम्॥ १२ ॥

अर्थः—जिनके हाथमे तलवारे हैं, ऐसे मही नदीके तट पर गिरे हुए भयङ्कराकार कबन्ध जलमेंसे निकल कर सुखसे सोये हुए बाल मत्स्य हैं क्या ?, इस तरह शोभा पाने लगे। यहा 'सन्देह' अलङ्कार है ॥ १२ ॥

दम्मामकोद्दामघनप्रणाद-
प्रतिस्वनैर्वारिधिराजगर्जे ।
तिमिङ्गिलाद्या क्षुभिता इवाद्रे-
श्चक्रुः समन्तादनुधावनं तत् ॥ १३ ॥

अर्थः—दमामियोंके द्वारा (वीरताकी प्रशसामें) ऊँचे स्वरसे कहे गये शब्दोंकी प्रतिध्वनियोंसे समुद्र चारों ओर गूँज उठा । तिमिङ्गिल आदि मत्स्य मानो मन्दराचलसे घबराये हुए हों, इस तरह चारों ओर दौडने लगे । क्षोभमें हेतुरूपसे मन्दराद्रिकी समावना की गई है, इसलिये हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ १३ ॥

रणस्थलीभूपतिरासकर्ण-
स्तत्याज बीकाभुजदण्डभीरुः ।
चलत्किरीट स्फुरदश्ववार-
श्चौहानवर्गोऽभिमुखीबभूव ॥ १४ ॥

अर्थः—महारावतजी बीकाजीके भुजदण्डसे डरे हुए महारावल आसकर्णने रणभूमिका त्याग कर दिया, और चञ्चल किरीट वाला घोडों पर सवार चौहान समाज (लड़नेके लिये) सामने होगया ॥ १४ ॥

जघ्नुः शितैः प्रासफलैः सखेटा-
श्चौहानभूपा रणरङ्गमत्ताः ।
समुल्लसद्बाहुकरालखड्गाः
सुशोणनेत्रा धृतवर्मदेहा ॥ १५ ॥

अर्थः—आँखे लाल हैं, कवच पहिने हुए हैं, हाथोंमें भयभीत करनेवाली तलवारें शोभा दे रही हैं, ऐसे रणके रङ्गमें मस्त हुए चौहानवंशीय राजा तीखे भालोंसे प्रहार करने लगे ॥ १५ ॥

सन्त्रासयन्यः किल दिग्गजाली-
दमामकानां ध्वनिभिः प्रवृद्धैः ।
चौहानभूपैश्चतुरङ्गसैन्यो
वीकानरेन्द्रोऽपि युयोध भूयः ॥ १६ ॥

अर्थः—महारावतजी श्रीवीकाजी—हाथी, घोड़े, रथ, पैदल-इनसे परिपूर्ण चतुराङ्गिणी सेनाको साथ लेकर दमामियोके द्वारा उच्च स्वरसे पढ़े गये वीररस-पूर्ण बिरुदोंसे दिग्गजोंको भयभीत करते हुए फिर भी चौहानोंके साथ युद्ध करने लगे। बिरुदपाठस दिग्गजोका डरना अत्युक्ति अलङ्कार है ॥ १६ ॥

चचाल भूमिः किल सागरान्ता-
श्चेलुर्दिशानामधिपा रयेण ।
तौ पुष्पवन्तावपि चेलतुर्य-
द्वीकानरेन्द्रे करवालहस्ते ॥ १७ ॥

अर्थः—महारावतजी श्रीवीकाजीने जब हाथमे तलवार ली, तब समुद्र पर्यन्त पृथ्वी और दश दिशाओके स्वामी इन्द्रादिदेव वेगसे कम्पित हो गये, तथा वे दोनों सूर्य चन्द्र भी चलित होगये। अत्युक्ति है ॥ १७ ॥

केऽपि प्रणेशुः करवालभिन्नाः
कट्टारिकासन्निहताः परेऽपि ।
बाणैरपाङ्गास्त्व परेऽरिवीरा-
वीकानरेन्द्रेण कृता रणेऽस्मिन् ॥ १८ ॥

अर्थः—महारावतजी श्रीवीकाजीने इस युद्धमें कुछ वीर वैरियोको तलवारसे, कई वीरोको कटारसे और कईको बाणोंसे विच्छिन्न कर दिये और वे मर गये ॥ १८ ॥

विलोक्य वीकाभुजदण्डमुच्चै-
रणस्थलीस्तेऽपि विहाय याताः
अद्यैव कालः कुपितः किमाहो-
स्विदेतदीयस्य कृपाणवेषात् ॥ १९ ॥

अर्थ—वे चौहान भी महारावतजी श्रीबीकाजीके उच्च भुजादण्डको देख कर इस विक्रमसिंहके तलवारके रूपमें आज काल ही कुपित हुआ है क्या?, ऐसे विचारसे युद्धभूमिको त्याग कर चले गये। 'सन्देह' अलङ्कार है ॥ १९ ॥

क्षेत्र प्रतापाय ददौ प्रतप्तो-
बीकाभुजादण्डलसत्प्रतापैः ।
इत्युक्तवान् सन्निहितः स्ववर्गो
मह्याः परं पारमुपाससाद ॥ २० ॥

अर्थः—महारावतजी श्रीबीकाजीके भुजदण्डके प्रचण्ड प्रतापसे सतप्त होकर रावल आसकर्णने बॉसवाडा प्रतापसिंहको दे दिया, इस तरह कहते हुए पासमें रहनेवाले अपने लोग मही नदीके दूसरे तट पर चले गये ॥ २० ॥

महान् प्रतापस्य जयस्तदाऽऽसी-
दभूत्सुरेभ्यो जयपुष्पवृष्टिः ।
सुखं स वशालयमध्यवर्त्ती
निर्विघ्नमन्तःपुरमन्दिरेषु ॥ २१ ॥

अर्थः—महाराज प्रतापसिंहका विजय होगया और देवोंकी (भूमि-देवोंकी) ओरसे (सैनिकों पर) विजयके उपलक्षमें पुष्पवृष्टि हुई, तथा बॉसवाडेमे महाराज प्रतापसिंह आनन्दपूर्वक रहने लगे, एव जनाना-महलमें भी विघ्नोंकी इतिश्री हुई ॥ २१ ॥

बभूव बीकात्मजतत्प्रतापः
श्रीतेजसिंह. प्रतिभूपशल्यः ।
पवित्रकीर्तिर्महनीयमूर्ति
क्षत्राम्बुजानामिव चण्डभानुः ॥ २२ ॥

अर्थ—महारावतजी श्रीविक्रमसिंहजीके पुत्र उनके प्रतापस्वरूप श्री-तेजसिंहजी हुए, जो प्रतिपक्षी राजाओंके शल्य थे, तथा पवित्रकीर्ति सुन्दरमूर्ति और क्षत्रियरूप कमलके लिये मानो मार्तण्ड (सूर्य) थे। शल्य और क्षत्राम्बुज दोनों रूपक है, तथा 'मानो मार्तण्ड थे' यह रूपकसे उत्थापित 'उत्प्रेक्षा' है ॥ २२ ॥

भूमण्डलं तेन भृशं चकासे
पुरन्दरेणेव पुरं सुराणाम् ।
आनीरधि प्रोत्कटतेजसेव
महीभृता तेन वृतं समन्तात् ॥ २३ ॥

अर्थः—जैसे देवोंकी नगरी अमरावती इन्द्रसे शोभा पाती है, इस तरह महाराज तेजासिंहजीसे समुद्र पर्यन्त सम्पूर्ण भूमि शोभा पाती थी, चारों ओर भूमण्डल उन महातेजस्वी महारावतजी श्रीतेजासिंहजीसे आवृत सा था, अर्थात् उनके तेजसे प्रकाशित सा था। पूर्वार्द्धमे उपमा और उत्तरार्द्धमे उत्प्रेक्षा है ॥ २३ ॥

अनेकभूपोत्तममौलिहीर-
नीराजितं पादयुगं विरेजे ।
प्रतापशंसिस्वभुजायुगस्य
युगान्तचण्डांशुसमस्य तस्य ॥ २४ ॥

अर्थः—जिनके भुजदण्डोंसे प्रतापका प्रकाश होता था और जो प्रलयकालके सूर्यकी समानता रखते थे, उन महारावतजी श्रीतेजासिंहजीके चरणकमल अनेक बड़े २ राजाओंके मुकटपर शोभा पानेवाले हीरोंके द्वारा होनेवाली नीराजनामे शोभा पाते थे, अर्थात् उनके तेजःप्रतापसे डर कर अनेक राजा चरणो पर सिर नमाते थे। वास्तविक आशयको प्रकरान्तरसे प्रकाशित किया है, इसलिये पर्यायोक्त अलङ्कार है ॥ २४ ॥

अनेकवैरिव्रजसुन्दरीभिः
संस्तूयमानो विनयेन वीरः ।
आक्रम्य सिंहासनमुग्रमूर्तिः
स्थितः प्रतापानलतापितारिः ॥ २५ ॥

दन्ताग्रदत्तस्वकराङ्गुलीभिः
सालस्थबिन्दुस्रवदीक्षणाभिः ।
क्लेशात्प्रहारे स्वशिरोऽङ्गुलीनां
प्रस्फोटनैर्म्लानमुखाम्बुजाभिः ॥ २६ ॥

अहो भवन्त करुणा न बाधते
प्रसाद एषो विधिदुर्लिपीनाम् ।
धम्मिल्लचूडाश्रुतिभूषणाना-
मित्थं बभौ त्व शरणं कृपालो ॥ २७ ॥

तीन श्लोकोका विशेषक —

अर्थः—जिन्होने प्रतापरूप अग्निसे शत्रुओको सतप्त कर दिया
और शत्रुओंकी स्त्रियॉ, दसो अङ्गुलियॉ दॉतोंके आगे रखी हुई हैं, सा
वृक्षके पत्ता-परसे जैसे बूँदें झरती हैं, इस तरह नेत्रोंमेसे बूँ झर रही है
ऊशके कारण प्रहार करनेसे (सिरमे हाथका प्रहार करनेमे) सिर औ
अङ्गुलियोंके चोट आई हुई हैं, जिनसे मुखोंकी आकृतियाँ मलिन होगई
ऐसी व्यवस्थामें रहती हुई जिनकी स्तुति करती थीं कि हे दयालु ! आश्चर्य
कि आपको करुणा बाधा नहीं करती है ?, यह विधाताके दुर्लेखोंका (बुरे लेखोंका
ही प्रसाद है, केशपाश चूड़ी, कर्णभूषण आदि सौभाग्य चिह्नोके अ
आप ही रक्षक हैं ॥ २५-२६-२७ ॥

बबाध नालस्यमहो महीश
न चाधयस्त परिपीडयन्ति ।
बुधैरनेकै स निनाय काल-
मन्वोदित खेदितवैरिवर्ग ॥ २८ ॥

अर्थ—महारावतजी श्रीतेजसिंहजीको न आलस्य बाधा करता था, न
मानसिक-चिन्ताएँ दु ख देती थीं। ये शत्रुओका मन नियन्त्रण करते रहते थे
और विद्वानोंके साथ आनन्दमें समय व्यतीत करते थे ॥ २८ ॥

चन्द्र कलङ्की स कलङ्कहीन
क्षार समुद्रो मधुराकृति स
स्थिर सुराणा विटपी चल स
कष्टोपमेय स बभूव भूप ॥ २९ ॥

स्थिर है और महाराजा साहिब चल थे, अत एव महाराजा साहिबको कष्टसे उपमा प्राप्त होती थी। अन्तिम पादका समर्थन 'चन्द्रः कलङ्की' इत्यादि वाक्योंसे होता है, इसलिये वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ॥ २९ ॥

वित्ते हि चित्तं न कदापि दत्तं
लुब्धो गुणानां गुणदत्तदृष्टिः।
यस्तेजसिंहः कलिकल्पवृक्षो
नापूरयद् दृष्टिगतं न कं कम् ॥ ३० ॥

अर्थः—महाराजा साहिबने वित्तकी ओर कभी चित्त नहीं दिया था, केवल आपको गुणोंका लोभ था, इसलिये गुणोंकी ओर ही दृष्टि रखते थे। महाराजा तेजसिंहजी इस कलिकालके कल्पवृक्ष थे, अपनी आखोंके सामने आने पर आपने किस २ के मनोरथोंकी पूर्ति नहीं की थी, अर्थात् सभीकी की थी।

'कलिकल्पवृक्ष' यह रूपक है ॥ ३० ॥

उद्यन्निर्मलमेदपाटविलसद्वंशैकचूडामणि-
श्रीमन्माधवभट्टसूरितनयो दिक्चक्रविख्यातधीः।
गङ्गाराममहाकविर्व्यरचयत्काव्यं सुधासोदरं
तस्मिञ्छ्रीहरिभूषणे सुचरिते सर्गोऽत्र षष्ठोऽगमत् ॥
॥ ३१ ॥

अर्थः—पूर्वोक्त है ॥ ३१ ॥

इति श्रीहरिभूषणे महाकाव्ये कवि-श्रीगङ्गारामकृतौ प्रतापजयो नाम षष्ठः सर्गः।

यह कवि-गंगाराम-कृत श्रीहरिभूषण महाकाव्यमे 'प्रतापविजय' नामक षष्ठ सर्ग पूर्ण हुआ ॥

सप्तम सर्ग ।

बभूवाथ महावीर' सिंहरावतभूपतिः ।
यदीयखड्गमाकर्ण्य विच्छाया म्लेच्छजातयः ॥ १ ॥

अर्थ—महारावतजी तेजसिंहजीके अनन्तर महान् वीर सिंघाजी हुए थे, जिनके खाँडेकी कथा सुन कर म्लेच्छ जातियाँ (यवन आदि) तेजोहीन हो जाती थीं ॥

इस सर्गमें अनुष्टुप् छन्द हैं। इनका उपयोग प्राय सब प्रकारके वर्णनोंमें होता आया है, इसलिये यहां युद्ध-वर्णनमें भी किया है ॥ १ ॥

पुरा दशपुराधीशः खानो माखनभूपतिः ।
चित्रकूटाधिनाथेन युयोध यवनेश्वरः ॥ २ ॥

अर्थ—पहिले मन्दसोर प्रान्तके हाकिम यवनसेना-नायक माखनखाँने चित्रकूट-पति महाराणा अमरसिंहके साथ झगडा किया था ॥ २ ॥

मिलिता हिन्दवः सर्वे युद्धाय समुपस्थिताः ।
तान् विलोक्य तुरुष्केशः सिंहचानुससार सः ॥ ३ ॥

अर्थ—(उस समय) सब हिन्दु मिल कर युद्धके लिये तय्यार हुए, उनको देख कर फौजदार माखनखाँ सिंघाजीके पास आया ॥ ३ ॥

तत्पितृव्यो महावीरो भानुसिंहो ययौ रणे ।
राणासेनाधिपं दृष्ट्वा योधशक्तावतं पुरः ॥ ४ ॥

अर्थ—आगे शक्तावत योधासिंहको महाराणाकी सेनाका अध्यक्ष देख कर महारावतजी सिंघाजीके काका वीरशिरोमणि भानुसिंहजी युद्धके लिये गये ॥ ४ ॥

बभूव तुमुलं तत्र तयोरन्योन्यमाहवम् ।
देवदानवगन्धर्वमुनिविस्मयकारकम् ॥ ५ ॥

अर्थ—वहां देव दानव गन्धर्व और मुनियोंको विस्मय करनेवाला तुमुल युद्ध उन दोनोंके परस्पर हुआ ॥ ५ ॥

खड्गान्निष्कासयामासुः केऽपि चर्मधरा भटाः ।
विस्फारं धनुषां मध्ये कुर्वाणाः समराजिरे ॥ ६ ॥

अर्थः—बीचमें धनुषोंको चमकाते हुए ढालवाले कई योद्धाओंने युद्धभूमिमें तलवार निकाली ॥ ६ ॥

विच्छिन्नबाहवः केऽपि परे मुद्गर-खण्डिताः ।
एकनेत्रास्त्वेकपादा विचेलुस्त्वपरे भृशम् ॥ ७ ॥

अर्थः—कुछ योद्धाओंकी भुजाएँ कट गईं, कुछ दूसरे मुद्गरोंकी चोटोंसे एक आँख और एक पाँव वाले हो गये, शेष रहे भाग गये ॥ ७ ॥

पट्ठाणाः पातिताः सर्वे यवना अपि यापिताः ।
मुद्गलाः सादितास्तत्र हप्सिनो निहता रणे ॥ ८ ॥

अर्थः—वहाँ युद्धमें पठान गिरा दिये गये, यवन भगा दिये गये, मुगल कुचल दिये गये और हप्सी मार दिये गये थे ॥ ८ ॥

मुमुचुः शक्तयः केऽपि मुशलान् लगुडोपलान् ।
निहता यवनाः सर्वे योधशक्तावतेन ते ॥ ९ ॥

अर्थः—कोई बलशाली योद्धा मुसल लाठी और पत्थरोंको फेंकने लगे। (इस तरह) शक्तावत योधसिंहने सभी यवनोंको मारा ॥ ९ ॥

तोबा तोबेति कुर्वाणा भानुसिंहमुपाययुः ।
मारयन्ति ससक्तेऽतिसहाये त्वयि तिष्ठति ॥ १० ॥

अर्थः—यवन तोबा करते हुए भानुसिंहजीके पास गये और कहने लगे आप जैसे युद्धाभिलाषी और अच्छे सहायकके खडे रहते हुए मार रहे हैं ॥१०॥

तेषामिति वचः श्रुत्वा खड्गमाकृष्य निर्ययौ ।
योधमाकारयन्वीरो युगान्तदहनोपमः ॥ ११ ॥

अर्थः—ऐसा उनका वचन सुन कर प्रलय पावककी समानता रखनेवाले वीर भानुसिंहजी शक्तावत योधासिंहको ललकारते हुए तलवार खींच कर

निकले ॥ ११ ॥

रुधिरस्त्रावसञ्जाता वाहिन्यो वाहिनी भूगत ।
मुण्डकूर्मकबन्धोग्र मद्गुखड्गराकुला ॥ १२ ॥

अर्थ —झरते हुए रुधिरमें पूरी नदियाँ बहा थीं, जो नदियाँ नरमुण्डरूप कछुए, कबन्धरूप मोटी मच्छियों और तलवाररूप छोटी मच्छियोंसे आकुल थीं ॥ १२ ॥

क्वापि धुम्रारवा पेतु क्वापि भीममहारवा ।
करिणा गर्जित क्वापि क्वापि ढक्कावनस्वना ॥ १३ ॥

अर्थ.—कहीं तूमें पड रही थी, कहीं बडे २ भयङ्कर शब्द होरहे थे, कहीं हाथियोंकी गर्जना होरही थी, कहीं रण ढोलकी आवाजें होरहीं थीं ॥ १३ ॥

इति घोरे रणे जाते योधशक्तावत स्वयम् ।
युयोध भानुना वीर सानुमानिव चञ्चल ॥ १४ ॥

अर्थः—इस तरह घोर सग्राम होने पर वीर शक्तावत योधसिंह स्वय चल पर्वतकी समानता रखता हुआ भानुसिंहके साथ युद्ध करने लगा ॥ १४ ॥

युध्यमानान् रणे दृष्ट्वा पातयामास तद्भटान् ।
मृगाना कुलमासाद्य समन्युरिव केसरी ॥ १५ ॥

अर्थ'—शक्तावत योधासिंह युद्धमें लडते हुए भानुसिंहजीके सैनिकोंको देख कर हरिणोंका झुण्ड मिलने पर क्रोध करते हुए केसरी सिंहकी तरह उन सैनिकोंको गिराने लगा ॥ १५ ॥

ननर्तुर्भूतभामिन्य' करमुण्डलमस्तका' ।
चीत्कृतीश्चक्रुरातृप्ता पिशाचा पिशितैर्घनै ॥ १६ ॥

अर्थः—भूतपत्नियाँ हाथोंमें मुण्डोंके सिर लिये हुए नृत्य करने लगीं । यथेष्ट रुधिरोंसे तृप्त हुए पिशाच चीत्कार करने लगे ॥ १६ ॥

कुठारैः खण्डयामासुः परे परशुभिः परान् ।
शक्तिभिस्तोमरैरन्यान् कोकबाणैस्तथाऽपरान् ॥ १७ ॥

अर्थः—कई वीर कुल्हाडोंसे शत्रुओंको खण्ड २ करने लगे । दूसरे वीर कुछ शत्रुओंको फरसोंसे, कुछको तलवारोंसे और भालोंसे, तथा और सब शेष रहे प्रतिपक्षी सैनिकोंको कोकवाणोंसे छिन्न भिन्न करने लगे ॥ १७ ॥

केऽपि छिन्नकरास्तत्र खञ्जाः पेतुः परे रणे ।
विच्छिन्नकन्धराश्चान्ये कर्णहीनास्तथेतरे ॥ १८ ॥

अर्थः—वहां युद्धमे कोई कटे हाथ, कोई लंगड़े, कोई रुण्ड, कोई कनकटे, इस तरह छिन्न भिन्न होकर गिरते थे ॥ १८ ॥

कबन्धा ननृतुस्तत्र खङ्गशक्तिधरा भृशम् ।
आयाम्येहीति भाषन्तो धावन्ति स्न परे परान् ॥ १९ ॥

अर्थः—हाथोंमें साँडा और तलवार लिये हुए रुण्ड वहाँ युद्धमे यथेष्ट नृत्य करते थे । कई वीर दूसरे वीरोंके साथ 'आता हूँ आओ' इस तरह बात करते हुए दौड़ते थे ॥ १९ ॥

करवालान् समुत्क्षिप्य देहि देहि त्वमग्रतः ।
अन्योन्यमिति कुर्वाणाः केऽपि पेतुर्हताः सह ॥ २० ॥

अर्थः—तलवारोंको उठा कर 'तुम पहिले दो दो' इस तरह परस्पर व्यवहार करते हुए साथ ही मारे जाने पर साथ ही गिरते थे ॥ २० ॥

पट्टिशैर्भ्राम्यमाणैस्तु मदमत्तमहागजाः ।
विदार्य कुम्भकूटानि पातिताः पर्वतोपमाः ॥ २१ ॥

अर्थः—घुमा २ कर फेंके जानेवाले पट्टिशोंसे पर्वताकार मदमे मस्त हुए बड़े २ हस्ती सिर तोड २ कर गिरा दिये गये ॥ २१ ॥

अगम्या भूरभूत्तत्र हताश्वरथहस्तिनाम् ।
संघातैस्तस्रक्तानां नदीभिश्च महाहवे ॥ २२ ॥

अर्थ —नष्ट किये गये घोड़े रथ और हाथियोंके ढेरोंसे तथा उष्ण रुधिरोंकी नदियोंसे वहां युद्धभूमिमें पेर रखनेकी भी जगह नहीं रही ॥ २२ ॥

युध्यमानं रणे भानुं दृष्ट्वा योधः समागतः ।
परस्परमभूद् युद्धं दारुणं वीरयोस्तयोः ॥ २३ ॥

अर्थः—युद्धमें भानुसिंहजीको लड़ते देख कर योधसिंह आया, जिसके साथ भानुसिंहजीका भयङ्कर युद्ध हुआ ॥ २३ ॥

आदौ बाणैस्ततः प्रासैरसिभिस्तदनन्तरम् ।
पश्चात्कट्टारकैर्युद्धं तयोरिव तयोरभूत् ॥ २४ ॥

अर्थः—प्रथम बाणोंसे, बादमें भालोंसे, फिर तलवारोंसे और अन्तमें कटारोंसे, उन दोनो वीरोंका युद्ध ऐसा हुआ कि उन दोनोंके युद्धके समान युद्ध उन दोनोंका ही था ॥ २४ ॥

तच्छत्रं भानुना बाणैश्छिन्नं योधोऽपि तद्ध्वजम् ।
उभौ चिच्छिदतुः सद्यः सस्वनं धनुषोर्गुणम् ॥ २५ ॥

अर्थ —भानुसिंहजीने बाणोंसे योधसिंहका छत्र छिन्न भिन्न कर दिया । योधसिंहने भी भानुसिंहजीका ध्वज ध्वस्त कर दिया । उन दोनोंने परस्परके धनुषकी शब्द करती हुई प्रत्यञ्चाके टुकडे कर डाले ॥ २५ ॥

उभावपि समुद्यम्य प्रासावन्योन्यमाहवे ।
जघ्नतुर्निर्दयं वीरौ मिलितौ मानजीवनौ ॥ २६ ॥

अर्थः—मान ही जिनका प्राण है ऐसे वे दोनों वीर भाले उठा कर परस्परके ऊपर निर्दयतासे प्रहार करने लगे ॥ २६ ॥

खड्गमाकृष्य चिच्छेद प्रासं भानुकरस्थितम् ।
सोऽपि खड्गक्षतं तस्मायुपवीतोचितं ददौ ॥ २७ ॥

अर्थ —योधसिंहने खाँडा खींच कर भानुसिंहजीके हाथमें वर्तमान भाले के टुकडे कर डाले । भानुसिंहजीने भी खाँडका ऐसा वार किया कि योधसिंहके जनेऊ बन गए ॥ २७ ॥

पश्चात्कट्टारिकाघातैः पातितः समराङ्गणे ।
योधशक्तावतो वीरो गतासुरगमन्नाभिधः ॥ २८ ॥

अर्थः—अनन्तर कटारोंके ऐसे वार किये कि वह वीरमूर्ति शक्तावत योधासिंह युद्धभूमिमें गिर पडा, उस वीरके प्राण चले गये, परन्तु नाम रह गया ॥ २८ ॥

आखनः स्खलिमापन्नः शक्त्या योधेन संहतः ।
राहुरिव पपातोर्व्यां कृष्णेनेव पुरा रणे ॥ २९ ॥

अर्थः—प्रथम देवासुरसंग्राममें भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सिर अलग किये जाने पर राहु गिर पड़ा था, इसी तरह तलवारसे शक्तावत योधासिंहके द्वारा मारे जाने पर (मन्दसोरका सूबा) माखनखाँ भूमि पर गिर पड़ा और उसको कबरकी शरण लेनी पडी ॥ २९ ॥

युद्धं यत्कृतवान् भानुस्तत्र साक्षी दिनेश्वरः ।
वक्षो यदीयमाभग्नं वीरैः स्वर्गकपाटवत् ॥ ३० ॥

अर्थः—भानुसिंहजीने जो युद्ध किया था, उसके विषयमें (आज भी) भगवान् सूर्य साक्षी हैं (क्योंकि भानुसिंहजीने सूर्यमण्डलका भेद कर वीरोचित गति प्राप्त की थी।) वीरोंने आपके वक्षःस्थलको स्वर्गके किवाडोंकी तरह तोडा है। ३० ॥

उद्यन्निर्मलमेदपाटविलसद्वंशैकचूडामणि-
श्रीमन्माधवभट्टसूरितनयो दिक्चक्रविख्यातधीः ।
गङ्गारामसुधाकविर्व्यरचयत्काव्यं सुधासोदरं
तस्मिञ्छ्रीहरिभूषणे सुचरिते सर्गोऽगमत्सप्तमः॥३१॥

अर्थः—पूर्वोक्त ही है ॥ ३१ ॥

इति श्रीहरिभूषणे महाकाव्ये कवि-श्रीगङ्गारामकृतौ सप्तमः सर्गः ।

कवि गङ्गाराम कृत 'श्री हरिभूषण' महाकाव्यमें 'म्लेच्छसंहार नामक सप्तम सर्ग समाप्त हुआ ॥

आसीच्छ्रीजसवन्तसिंहनृपतिः सिंहात्मजो वीर्यवा-
न्वैरिव्रातकुठारपातकुशलः स्फूर्जत्प्रतापानलः ।
नेमुः कोटिपदातयश्चरणयोः श्रुत्वैव दम्मामकं
लक्षं कच्छतुरङ्गसादिनिवहा नित्यं हि यस्य प्रभोः ॥ १ ॥

अर्थ—महारावलजी श्रीयशवन्तसिंहजी सिंघाजीके पुत्र थे । आप बड़े ही पराक्रमी प्रतापशाली तथा शत्रुओंपर फरसा चलानेमें निपुण थे, प्रतिदिन एक कोट पैदल सेना और एक लाख काठियावाड़ी घोड़ोंपर चढ़े हुए घुड़सवार ढोलके शब्दको सुनते ही आपके चरणोंमें सिर नमाते थे ॥ १ ॥

कान्त्या मन्मथमिङ्गितैर्मधुरिपुं कीर्त्या सुधांशुं धिया
वागीशं बहुना धनेन धनपं वीर्येण जम्भापहम् ।
शक्त्या शक्तिधरं क्रुधा हुतवहं मानेन दुर्योधनं
दानेन प्रचुरेण कर्णमपि यो विस्मारयन् सम्बभौ ॥ २ ॥

अर्थ—उक्त महारावलजी साहिबने शरीरकी कान्तिसे कामदेवको, चेष्टाओंमें भगवान् विष्णुको, कीर्तिसे चन्द्रमाको, बुद्धिसे बृहस्पतिको, सम्पत्तिसे कुबेरको, बलसे इन्द्रको, शक्तिसे कार्तिकेय स्वामीको, क्रोधसे अग्निको, मानसे दुर्योधनको और प्रचुर दानसे कर्णको भुला दिया था । यहाँ उपमेयकी प्रशंसाके लिये उपमानकी हीनता दिखाई है, इसलिये प्रतीप अलङ्कार है ॥ २ ॥

एकस्मिन् समये रराज विलसन् 'राणा' सभायां नृप
कान्त्या भूमिभृतोऽपरानधरयंस्तस्यार्धसिंहासने ।
नानादेशनिवासिना क्षितिभृता भृत्यैश्च मुख्यैर्यदा
नत्वोपायनमग्रतो विनिहितं श्रीदेवलेन्द्रप्रभोः ॥ ३ ॥

अर्थ—एक समय महाराणाजी सभामें नानादेशवासी माण्डलिक राजा बैठे हुए थे । महारावलजी यशवन्तसिंहजी महाराणाके अर्द्ध सिंहासनपर विराजमान थे । महारावलजीके तेजसे उपस्थित सभी माण्डलिक राजा तेजोहीन (फीके) मालूम होते थे । उस समय कुछ सरदार और बड़े कर्मचारियोंने देवदुर्गेश्वर इन महारावलजीके सामने झुक कर नजराना किया ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा क्रोधहुताशने निपतितः श्रीचित्रकूटाधिपो-
ऽप्येतत्कर्णसुतो बभूव बलिनां कर्णेषु कर्णेजपः ।
वीरः कोऽपि समास्ति सांप्रतममुं यो हन्ति मध्येसभं
विश्वासेन समुत्थितोऽनुचितकृद्रामः स्वयं सज्जितः ॥ ४ ॥

अर्थः—यह देख कर महाराणा कर्णसिंहका पुत्र चित्रकूटेश्वर महाराणा
त्सिंह आग-बबूला हो गया और जोरदार सरदारोंके कानोंमें कानाफूसी
के यह कहा कि 'है कोई इस समय मेरा ऐसा वीर !!! जो इसे मारे।'
सुनते ही दुष्ट राठौड़ रामसिंह शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर विश्वासके साथ
ामेंसे उठा ॥ ४ ॥

दत्ताज्ञोऽथ जगाम देवलपुरं पन्थानमग्रे ततो
रुध्वा चोरसमश्च रामनृपतिर्विश्वासघातोत्सुकः ।
दृष्ट्वा श्रीजसवन्तमागतमयं खड्गैकमित्रं रणे
निस्त्रिंशैः प्रतिबोधयन्स चकितः संप्राप तस्यान्तिकम् ॥५॥

अर्थः—हुक्म होनेके बाद राठौड़ रामसिंह देवलियाको रवाना हुआ और
रकी तरह विश्वासघात करनेकी इच्छासे आगे मार्ग रोक कर बैठ गया।
ाममें केवल तलवारकी सहायताकी अपेक्षा रखनेवाले महारावतजी यशवन्तसिंह-
को आये हुए देख कर तलवारोंसे अन्य सैनिकोंको चमकाता हुआ डरता २
हारावतजीके पास पहुँचा ॥ ५ ॥

संख्यं तत्र तयोरभून्मिलितयोरन्योन्यमत्यद्भुतं
वीराणां तदनन्तरं कथमिदं को वेति कस्यासि रे ।
भूयः श्रीजसवन्तसिंहविभुनेत्युक्तं तदोवाच सः
क्रुद्धो 'राण' नृपोऽहमस्मि सुभटो रामोऽरिहिंसाग्रणीः ॥ ६ ॥

अर्थः—वहां उन दोनोंकी मुठभेड होनेपर परस्पर बडा अद्भुत युद्ध हुआ।
ीरोंमे उस समय यह कैसे ?, कौन है ? किसका है रे ? इस तरह प्रश्न
ोने लगे। बादमें महारावतजी साहबने यही पूछा तब राठौड़ रामसिंहने कहा
कि महाराणा जगतसिंह नाराज हुए हैं, मैं उनका सरदार, शत्रुदलन करनेवालोंका
ुखिया रामसिंह हूँ ॥ ६ ॥

सङ्ग्रामे किल भारते बहुतरं कृत्वा रणं वीर्यवान्
गाङ्गेयो विरराम चार्जुनमपि दृष्ट्वा शिखण्डान्वितम् ।
खड्गेनैव हृतं हि रे तव यशस्तस्मान्मया सङ्गरे
विश्वासोपहतस्य दुर्मुख ! मुखं नालोकनीयं च ते ॥ ७ ॥

अर्थः—महाभारतके युद्धमें परमपराक्रमशाली भीष्म पितामहने भी अर्जुनको शिखण्डीकी ओटमें विश्वासघात करता हुआ देख कर युद्धसे मुख मोड़ लिया था, इसी कारण तुझ विश्वासघातीका भी मैं समाममें मुख देखना नहीं चाहता हूँ, इस मेरे यशको तेरी ही तलवारने नष्ट किया है ॥ ७ ॥

पश्चान्माधवकुमारकेण बहुभिर्धिक्रान्तमन्तर्लस-
न्मानेन प्रभुणा भटैरथ तदा भग्न- स रामः स्वयम् ।
तच्छ्रुत्वाऽऽशु चुकोप 'राण' नृपतिर्निष्कासयामास तं
देशान्म्लेच्छपुरेषु खेलतितरामद्याप्यगस्तीशवत् ॥ ८ ॥

अर्थः—इस कथनके अनन्तर कुँवर महासिंहजीने, गर्वगम्भीर भावके साथ स्वयं महारावतजी साहिबने तथा सैनिकोंने शत्रुओंके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया । कुछ समयके बाद राठौड़ रामसिंहका पराजय होगया । यह सुन कर महाराणा जगत्सिंह बड़े नाराज हुए और राठौड़ रामसिंहको मेवाड़से निकाल दिया, जो अभी भी अगस्त्यीशके समान म्लेच्छपुरोंमें खेल रहा है ॥ ८ ॥

वीरः श्रीहरिसिंहसूनुरभवत्तस्य प्रभोरग्रणी
राजर्षिर्धरणीतले धरणिभृन्मूर्द्धानमारोहयन् ।
विद्युत्करपतत्कृपीटयमरय॰ कौक्षेयकं नित्यशः
श्रुत्वा वक्षसि रक्षयन्ति वनिताः प्राणात्ययाशङ्कया ॥ ९ ॥

अर्थ—महारावतजी यशवन्तसिंहजीके पुत्र महारावतजी हरिसिंहजी हुए जो बड़े ही वीर और राजर्षि थे, भूभृतोंके (राजाओंके पक्षान्तरमें पर्वतोंके) सिर पर शोभा पानेवाले पवित्र रत्नाकर थे, जिनके तलवारोंकी धारोंके गुरु पर पड़ने, वहाँ पे भी उनकी तलवारकी धार सुनते ही प्राण न त्याग दे, इस शङ्कासे स्त्रियोंको अपने सीने पर लिपटी हुई ही रखते थे । 'धरणिभृत' शब्द श्लिष्ट है, 'विद्युत्करपात' रूपक है ॥ ९ ॥

वीर श्रीजसवन्तसिंह-तनय श्रीमँस्त्वयि प्रस्थिते-
ऽभूदन्विन्ध्यवनीं विनाऽप्यरिसङ्घीशानां स्वदुर्गाण्यधः
चञ्चत्तुङ्गतुरङ्गचञ्चलखुरक्षुण्णाक्षमामण्डल-
क्षुभ्यद्धूलिपरम्परोत्थितरजो दिक्चक्रमाक्रामति ॥ १० ॥

अर्थः—हे महास्रवतजी यशवन्तासिंहजीके पुत्ररत्न वीर-श्रेष्ठ श्रीमान् हरिसिंह आपके शत्रुविजयके लिये प्रस्थान करते ही विन्ध्यारण्यके अतिरिक्त और सब जगह शत्रु राजाओके किले नीचे होगये। नाचते हुए उत्तुङ्ग तुरङ्गोंकी चञ्चल टापोसे खुदी हुई जमीनसे इतनी धूलि ऊपर उठती है कि जिससे सब दिशाएँ आच्छन्न हो जाती हैं। अत्युक्ति है ॥ १० ॥

तावन्मत्तमदाम्बुभृत्करटिनो गर्जन्ति गेहाङ्गणे
चञ्चत्तुङ्गतुरङ्गमाः प्रतिदिनं नृत्यन्ति ताव्रङ्कुशम्।
तावत्तेऽपि पठन्ति वन्दिनिवहाः स्तोत्रं प्रतिक्ष्माभृतां
यावत्ते हरिसिंह! लोचनयुगप्रान्ते न शोणद्युतिः ॥ ११ ॥

अर्थः—हरिसिंह! प्रतिपक्षी राजाओके राजमहलोंके आगे, तभी तक मद झरते हुए मस्त हस्ती गर्जना करते हैं, तभी तक बडे२ चपल घोड़े प्रतिदिन नृत्य करते हैं और तभीतक वन्दी जन भी स्तुति करते हैं, जब तक कि आपके आँखों-के कोनोंमे ललाई न आवे ॥ ११ ॥

वीरश्रीहरिसिंहभूभृति चलत्युर्वी सहार्वीधरै-
रेषा संचलति दृढं फणिपतिर्धत्ते फणामण्डलीम्।
त्रुट्यत्तुङ्गकठोरपृष्ठकमठोऽप्यङ्गानि सङ्कोचय-
त्युद्यद्धूलिपरम्पराऽन्धनयना दिक्चक्रचक्रेऽरयः ॥ १२ ॥

अर्थः—हे वीरश्रेष्ठ हरिसिंह! दलबल सहित आपके प्रस्थान करने पर पर्वतमण्डिता सम्पूर्ण पृथ्वी विचलित हो जाती है, पृथ्वी धारण करनेवाला शेष अपने फनोंको दृढ़ रखता है, भूमण्डलका आधार कच्छप अपनी पीठ भग्न होती सी मालूम होनेसे (दृढ़ताके लिये) मुख, कर, चरण आदि अङ्गोको सिकोडता है, रज इतना उडता है कि जिससे चारो ओर के शत्रु अन्धेसे हो जाते हैं। अत्युक्ति है ॥ १२ ॥

वीरश्रीहरिसिंहभूभृति रुषा दिल्लीं प्रति प्रस्थिते
कन्धारे न मनाग् ज्वलत्यपि भिया चुल्लीजनानां गृहे ।
वल्लीं नैव विमुञ्चति प्रतिदिनं मक्काऽधिनाथो हहा
हप्साने विचरन्ति सन्ततमहो भिल्लीगणाः केवलम्॥१३॥

अर्थः—वीरशिरोमणि महारावतजी हरिसिंहजी कोपके साथ जब दिल्लीके लिये प्रस्थान करते हैं, तब कन्दहारमें भयसे लोगोंके घरोंमें चूला जलना बन्द होजाता है, मक्काका ॐ रईस सदा जङ्गली लताओंमें घुस कर बैठा रहता है, उनको छोड़नेका साहस नहीं कर सकता है, हप्सान देशमें केवल भीलोंकी स्त्रियाँ ही घूमती रहती हैं। चुला न जलाना, रईसका लताओंमें बैठना आदि घटनाओंका सम्बन्ध न होते हुए भी सम्बन्ध स्थापित किया गया है इसलिये 'सम्बन्धातिशयोक्ति' अलङ्कार है ॥ १३ ॥

उन्मीलत्कमलाकरादपि शरच्चन्द्रादपि प्रोल्लस-
त्काशादप्यहिराजतोऽपि विलसद्गङ्गातरङ्गादपि ।
ईशादिन्द्रकरीन्द्रतोऽपि विलसत्क्षीराब्धिफेनादपि
स्वच्छा कीर्तितरङ्गिणी विजयते श्रीदेवलेन्द्रप्रभोः ॥ १४ ॥

अर्थः—देवदुर्गेश्वरकी कीर्ति तरङ्गिणी खिले हुए चन्द्रविकासी कमलोंसे भी, शारद सुधाकरसे भी, चमकते हुए सफेद काशसे भी, नागराज शेषसे भी, भागीरथीकी चमकती हुई लहरोंसे भी, भगवान् चन्द्रशेखरसे भी, इन्द्रके हाथीसे भी और क्षीरसमुद्रके फेनसे भी अधिक स्वच्छ है। कीर्तितराङ्गिणी, यह रूपक है ॥ १४ ॥

लोकेश खटिकारसेन वटिकामपूर्य चन्द्रच्छला-
द्बिन्दून्व्योम्नि करोति तारकमिषाद्दन्ताश्वदन्तावलान् ।
वीर श्रीहरिसिंह नैवमिति चेद्राकासु पूर्णः कुहू-
मापन्नोऽप्यधुना कथ स नियत सक्षीयते चन्द्रमाः ॥१५॥

अर्थ—हे वीरशिरोमणे हरिसिंह! विधाता छलसे चन्द्रमाके रूपमें खड़ीके पानीसे कटोरेको (वटिका-वाटकी) भर कर तारोंके बहाने ८७३२ बिन्दुओंको बनाता है, यदि ऐसा न हो तो पूर्णिमाके दिन पूरा भरा हुआ यह (कटोराके

रूपमें वर्तमान) चन्द्र अमावास्या पास आनेपर नियमसे क्षीण क्यों होता है।

भावार्थ यह कि यह चन्द्र नहीं है, किन्तु पतली खड़ीसे भरा हुआ कटोरा है। तारे नहीं हैं, किन्तु खडीकी विन्दु हैं, पूर्णिमाके दिनमें ही आकाशरूप आँगनमें इन खडीकी विन्दुओंका लगना प्रारम्भ होजाता है, यह अमावस्याको पूरा होता है, उस दिन तारकरूप विन्दु ८७३२ संख्यामें आकर पूर्ण होजाते हैं और खडीका कटोरा भी खाली होजाता है। उक्त महारावतजी साहिबने जो शत्रुओं पर विजय प्राप्त किया है, उसकी खुशीमें विधाता तारकरूप विन्दुओंसे आकाशाङ्गनको सुशोभित कर रहा है। यहाँ सत्य वस्तु चन्द्र और तारक ' छल, ' मिष, इन शब्दोंसे छिपा दिये गये हैं और उत्तरार्द्धमें हेतु भी दिखाया है, इसलिये कैतवापन्हुति,हेत्वपन्हुति दोनों मिल गई है ॥ १६ ॥

रे रे मालवनाथ मुञ्च सहसा गर्व सवर्ग नम-
न्नर्थं त्वं पुरतो निधेहि यदि चेदालम्बसे जीवितम्।
नो चेदेष महीश देवलपुराधीशः समीपे तव
प्रत्यक्षं कुरुतेऽरिवीरवनिताधम्मिल्लकोन्मूलनम् ॥ १६ ॥

अर्थः—अरे मालवेश्वर! शीघ्रताके साथ अभिमानका त्याग कर और अपने इष्ट मित्र सहित देवदुर्गेश्वर महारावतजी हरिसिंहजीके आगे नजराना रख, यदि तू जीना चाहता है तो, नहीं तो यह देवदुर्गेश्वर तेरे ही पास वैरी वीर वनिताओंके केशभारका सबके सामने उन्मूलन करता है॥ १६ ॥

नोष्णीषं शिरसि स्थितं दशशतच्छिद्रोऽपि नो कञ्चुको
मालिन्यं न मुखे न चास्य सहगो दारिद्र्यनामा सखा।
नो जानन्त्यवलोकितानपि पतींश्चित्रं कवीनां स्त्रियः
शक्रादप्यधिकान्मनोभवतनूंस्त्वद्दानलीलायितात् ॥ १७ ॥

अर्थः—हे दानवीर! आपके दानकी महिमासे कवियोकी परिस्थिति ऐसी होगई है कि वे इन्द्रसे भी बड़े और कामदेवके समान सुन्दर शरीर वाले होगये हैं, इनको ऐसी अवस्थामें देख कर इनकी स्त्रियाँ, सिर पर वह पगड़ी नहीं है, वह सहस्रच्छिद्री अङ्गरखा भी नहीं है, मुख पर मलिनता नहीं है, साथ रहनेवाला दारिद्र्य सखा भी नहीं है, इस तरह नित्य तर्क करती हुई परिचित पतियोंको भी पहिचाननेमें असमर्थ है। पहिचाननेकी योग्यता रहते हुए भी उसके अभावका

वर्णन किया है, इसलिये 'असम्बन्ध तिशयोक्ति,' अलङ्कार है ॥ १७ ॥

येषां वेश्मनि जीर्णकोद्रवकणैः क्षुद्रोदरं पूर्यते
क्षुन्निद्रा हरते विमोचयति सा तन्द्रापरा दीनता ।
वीर श्रीहरिसिंह तेऽपि कवयस्त्वद्दानलीलायिता-
न्मातङ्गाधिपमारुहन्ति तुरगान्कृत्वा पुरः सज्जितान् ॥१८॥

अर्थः—हे वीराशीरोमणे ! जिनके घरोंमे पुराने कोदोंके दानोंसे किसी तरह पेट भरा जाता है और क्षुधासे जिनकी निद्रा तन्द्रा सदाके लिये अस्त है, वे ही कवि आपके दानकी महिमासे, सजे हुए घोडोंको आगे करके गजेन्द्र पर आरोहण कर रहे हैं ॥ १८ ॥

मा त्वं कल्पमहीरुह प्रतिदिनं गर्वान्धकारं गमो
येनैको भुवनेऽस्मि दाननिपुणस्तादृङ् न मादृक्परः ।
एष श्रीहरिसिंह-देवलपुराधीशः स्वयं भिक्षुक-
द्वारे दत्तकरीन्द्रबन्धनदृढस्थूणा करिष्यत्यत ॥ १९ ॥

अर्थ—हे कल्प वृक्ष ! तूं ऐसा अभिमान मत कर कि इस जगत्में मैं ही वैसा दानी हूँ, मेरे समान दूसरा नहीं है, क्योंकि यह देवलपुरेश्वर हरिसिंह दान किये हुए हाथीके बन्धनके लिये भीखमँगेके दरवाजे पर भी स्तम्भ गड़ना रहा है। यहाँ वर्ण्य उपमेय महाराजा साहिबके लिये अन्य कल्प वृक्षका अनादर किया है, इसलिये तीसरा 'प्रतीप' अलङ्कार है ॥ १९ ॥

भेरीभाङ्कृतिभिर्महेभनिनदैर्ढक्कानिनादैस्तव
प्रस्थाने हरिसिंह वैरिनिवहाः सर्वेऽपि संप्रस्थिताः ।
किं नूमः कृतकान्तरं वयममी भूमण्डलाखण्डल-
क्षुभ्यन्मस्तकदत्तहस्तयुगलो जातः सुधर्माधिपः ॥ २० ॥

अर्थः—हे वीरशिरोमणे ! आप जब शत्रुओं पर विजय पानेके लिये प्रस्थान करते हैं, उस समय ढोलोंकी ढमढमाहट, नगाड़ोंकी गड़गड़ाहट और हाथियोंका चिंघाड़ना ऐसा होता है कि जिससे शत्रु प्रथम ही भाग जाते हैं, हम और दूसरा कौतुक क्या कहें ? देव सभामें बैठे हुए इन्द्रका भी सिर ठनक रहा है, जिससे वह

दोनो हाथ अपने सिर पर रख कर बैठा है । यहाँ 'सम्बन्धातिशयोक्ति' अलङ्कार है ॥ २० ॥

को वा तिष्ठति भूपतिः प्रथमतः श्रीदेवलेन्द्रप्रभोः
सामर्थ्यं किञ्चिदुपैति वीर भवतो भूमण्डलाखण्डल ।
युद्धक्रुद्धपिनद्धवर्मसुभटे यत्खड्गसंघट्टनाद्
उद्यद्वह्निकणैकदेशवडवावह्निर्दहत्यम्बुधिम् ॥ २१ ॥

अर्थः—हे महीमहेन्द्र ! वीरशिरोमणे ! देवदुर्गेश्वर ! आपके सामने कौन खड़ा रहता है और आपकी बराबरी करता है, युद्धमे क्रुद्ध हुए कवचधारी वीर पर जो आपने खांडा झाड़ा और उससे जो आगकी चिनगारियॉ निकलीं, उनकी वह वाडवाग्नि एक अंश है, जो कि समुद्रको जलाता रहता है । सम्बन्धातिशयोक्ति है, ॥ २१ ॥

राजानो रणरङ्गदत्तमनसः के केन नो नम्रतां
गच्छन्ति प्रतिवासरं चरणयोः श्रीदेवलेन्द्रप्रभोः ।
यद्दोर्दण्डलसत्कृपाणभुजगः प्रत्यर्थिभूवल्लभ-
प्राणक्षीरकृतप्रपानमसृणो भूभृच्छिरो धावति ॥ २२ ॥

अर्थः—रण रङ्गकी चाह रखनेवाले कौन राजा प्रतिदिन देवदुर्गेश्वरके चरणोमे झुकते नही हैं, अर्थात् सभी झुक जाते हैं क्यों कि देवदुर्गेश्वरके हाथमे खेलता हुआ खड्ग—नाग प्रतिपक्षी राजाओके प्राणरूप क्षीरके पानसे लुब्ध होता हुआ राजाओके सिरोपर झपटता है । यहाँ सावयव 'रूपक' अलङ्कार है ॥२२॥

तिष्ठन्ति त्वयि तिष्ठति प्रभवति त्वय्युत्थितेऽप्युत्थिता
गच्छन्ति त्वयि गच्छति स्वभवने सुप्ताश्च सुप्ते त्वयि ।
इत्थं यत्कुरुषे तदत्र रिपवो विख्यातवीरव्रताः
कुर्वन्ति प्रतिवासरं परमया भक्त्या तवाराधनम् ॥ २३ ॥

अर्थः—हे देवदुर्गेश्वर ! आपके बैठनेपर शत्रु भी बैठ जाते हैं और आपके खड़े होने पर शत्रु भी खड़े होते हैं, आप महलोंमें पधारते हैं, तब शत्रु भी अपने २ घर जाते हैं. जब आप शयन करते है तो शत्रु भी सो जाते है, इस

तरह जो दैनिक व्यवहार आप करते हैं उसीका अनुकरण करते हुए प्रसिद्ध वीर-व्रतधारी शत्रु परम भक्तिसे प्रतिदिन आपकी आराधना करते हैं ॥ २३ ॥

भास्वद्वंशशिरोमणिर्गुणगणालङ्कारभूषामणि-
भूर्मीभालविशालभूषणमणिर्द्विट्सर्परक्षामणिः ।
कान्ताकामविशाललोचनमणिश्चिन्तामणिश्चिन्तितो ॥
जीया' श्रीहरिसिंह ! भूपमुकुटालङ्कारचूडामणिः ॥ २४ ॥

अर्थः—भगवान् भास्करके वंशमें आप शिरोमणि हैं, गुणमय भूषणोंके आप शोभामणि हैं, भगवती वसुन्धराके आप विशाल भालको भूषित करने वाले मणि हैं, शत्रुरूप सर्पोंसे बचनेके लिये आप रक्षामणि हैं, कामिनियोंके मनोरथोंके लिये आप विशाल लोचनमणि हैं, चिन्तनमे आप चिन्तामणि हैं राजाओंके राजमुकुटके आप चूडामणि हैं, आपकी जय हो। 'मालारूपक' अलङ्कार है ॥ २४ ॥

युद्धे कर्मणि हस्तचर्मणि दृढ देहोल्लसद्वर्मणि
प्रारूढे त्वयि वाहिनीबलिकरेऽत्युच्चैस्तुरुष्कार्वणि ।
दृष्ट्वाऽनेकमहीशसुन्दरवरानायन्ति देवाङ्गना
धूलीदुर्गमुपेत्य भानुरचति स्वीयं वपुः प्रायशः ॥ २५ ॥

अर्थः—सेनाओंके बलिदान करनेवाले आप, कवच पहिने हुए, हाथमें ढाल लिये हुए जब तुर्की घोडे पर सवार होते हैं, तब अनेक सुन्दर २ नरेन्द्र वरोंको देखकर (वरनेके लिये) देवाङ्गना आती हैं, भगवान् भास्कर प्राय धूलिमय दुर्गमें प्रवेश करके अपने शरीरकी रचा करता है। यहा 'कर्मणि', 'चर्मणि' 'वर्मणि' 'अर्वणि' यह पदान्तगत 'अन्त्यानुप्रास' शब्दालङ्कार है। वीर वैरियोंके मरणका प्रसङ्ग आते ही देवाङ्गना आने लग गई हैं इसलिये 'चपलातिशयोक्ति' अलङ्कार है ॥ २५ ॥

नानारङ्गतुरङ्गमाः प्रतिदिनं के के न सङ्कल्पिता-
गुञ्जन्मत्तमधुव्रता करटिनः के के न दत्तास्त्वया ।
वीर श्रीहरिसिंह भूप ! सतत जीया सहस्र समा
येनैको भुवि कल्पवृक्षसदृशो दृष्टः समन्तान्मया ॥ २६ ॥

अर्थः—हे वीर शिरोमणे हरिसिंह ! आपने प्रतिदिन कितने रङ्ग विरङ्ग घोड़े और भ्रमर जिनके कपोलोंपर गूँज रहे हैं, ऐसे मदमत्त हस्ती दान नहीं किये ?। मैंने तो कल्प वृक्षके समान पृथ्वीपर एक आपको ही देखा है, आपकी निरन्तर हजारसाला जय हो ॥ २६ ॥

पृथ्वीं शासति भूभृति त्वयि सदाचारः परं वर्धतेऽ-
कल्पोऽल्पं न हि नास्ति, कर्मणि जनः स्वीये दृढस्तिष्ठति।
भूदेवाश्च कृताग्निहोत्रचयनाः पुञ्जाः स्फुरत्तेजसां
लोके तस्करताकथैव न यथा वन्ध्यासुतो धावति ॥ २७ ॥

अर्थः—जबसे आपने राज्याधिकार प्राप्त करके पृथ्वीका शासन प्रारम्भ किया है तभीसे सदाचारकी वृद्धि हो रही है, लोग जरा भी असमर्थ नहीं हैं, अपने २ काममें सभी दृढ़ हैं, ब्राह्मण सभी तेजके पुञ्ज और अग्निचित् हैं। जैसे वन्ध्या-पुत्र दौड़ता है, इस वाक्यका कोई अर्थ नहीं है, इसी तरह चौर्यकथा भी कोई वस्तु नहीं है ॥ २७ ॥

वामे चर्मधराः करालविलसत्कौक्षेयका दक्षिणे
धावन्तः प्रतिभूपमूर्द्धनि भृशं संग्रामभूलम्पटाः।
त्रुट्यद्दन्तिकठोरकुम्भविगलन्मुक्तामिषाद्वैरिणां
कीर्तिं हन्त हरन्ति देवलपुराधीश द्रुतं त्वद्भटाः ॥ २८ ॥

अर्थः—हे देवदुर्गेश्वर ! बड़ी खुशी है कि संग्राम भूमिमें असीम प्रेम रखने वाले आपके सैनिक बाईं ओर ढाल और दाईं ओर तलवार धारण करके प्रतिपक्षी राजाओंपर धावा करते हुए हस्तियोंके विदीर्ण हुए कुम्भस्थलोंमेंसे निकलते हुए मोतियोंके बहानें शत्रुओंकी कीर्तिको शीघ्र हरण कर रहे हैं। यहां सत्य वस्तु गजमुक्ताको 'मिष' शब्दके प्रयोगसे छिपा दिया है, इसलिये 'कैतवापन्हुति' अलङ्कार है ॥ २८ ॥

तस्यानेकगुणोत्करांस्तव वयं किं वर्णयामो भृशं
येनाकारि महोदधिर्लघुतरो गम्भीरवृत्त्यैकया।
त्वं गोत्रप्रतिपालकः प्रतिपदं गोत्रस्य पक्षापह-
स्त्विन्द्रः किं तुलनामुपैति भवतो भूमीशचूडामणे ॥२९॥

अर्थः—जिन्होंने अपनी अद्वितीय गम्भीर वृत्तिसे महोदधि समुद्रको क्षुद्र बना दिया, उनके असख्य गुणोंका हम क्या वर्णन करें। हे राजराजेन्द्र ! आप गोत्रके (वंशके) प्रतिपालक हैं और इन्द्र गोत्रके (पर्वतके) पक्षका नाशक है, इन्द्र आपकी समानता कैसे प्राप्त कर सकता है। महारावतजी साहिबमें इन्द्रकी अपेक्षा आधिकता प्रमाणित की है, इसलिये आधिक्यपर्यवसायी 'व्यतिरेक' अलङ्कार है ॥ २९ ॥

गच्छन्तु प्रतिभूपवीरनिवहा दिग्गूढकोणान्तरे
जीवन् भद्रशतानि पश्यति जनो लोके कथैतावती ।
यस्मात्तस्य दृढ कृपाणभुजग' प्रत्यर्थिचक्रप्रिय-
प्राणक्षीरभृतोदरः पुनरपि प्रायस्तदाकाङ्क्षति ॥ ३० ॥

अर्थ —हे देवदुर्गेश्वरके प्रतिपक्षी राजाओं ! तुम दिशाओंके किसी छिपे हुए कोनेमें चले जाओ, मनुष्य जीता रहे तो अनेक मङ्गल देखता है, ऐसी लोकमें कहानी है। यह देवदुर्गेश्वरका कृपाणसर्प प्रतिपक्षियोंके प्रियप्राणरूप क्षीरसे पेट भर जानेपर भी फिर प्राय. वही चाहता है। यहां सावयव 'रूपक' अलङ्कार है ॥ ३० ॥

श्मश्रूत्कुण्डलयन्ति वीरनिवहा निष्कास्य कौक्षेयका-
नुष्णीषं कुटिलं विधाय समरे भूयोभुजाद्दष्टय: ।
तावच्चञ्चलयन्ति चञ्चलहयान्यावन्न दृष्टो मनाक्
मङ्गस्ते हरिसिंह ! दक्षिणकरे दम्भोलिदम्भापहः॥ ३१ ॥

अर्थ —प्रतिपक्षी वीर युद्धमें पगड़ी टेढी किये हुए, वार २ भुजाओंको देखते हुए तभी तक मूँछे मरोड़ते हैं और चञ्चल घोड़ोंको चञ्चल करते हैं, जब तक कि आपके दाहिने हाथमें इन्द्र-वज्रका मदभङ्ग करने वाला खाँडा जरा देखते नहीं है। भुजाओंका देखना मूछोंका मरोड़ना आदि 'स्वभावोक्ति' है ॥ ३१ ॥

राजानो बहवो गतास्तदपि नो केनापि दूरीकृता
भीतिश्चन्द्रशिरोऽस्य राहुजनिता सा त्याजिता श्रीमता ।
स्नात सङ्गरसङ्क्रमे प्रतिभटैस्त्वत्खङ्गधाराजले
मुक्तो वैरिविलासिनीमुखशशी धम्मिल्लराहोर्भयात् ॥३२॥

अर्थ:—अनेक राजाओंने (इस पृथ्वी पर) जन्म लिया है, तथापि किसीने भी चन्द्रशिशुको राहुके भयसे मुक्त नहीं किया था, उसको आपने मुक्त किया है। रणसंक्रान्तिके दिन आपके खड्गधारातीर्थके जलमें प्रतिपक्षियोंने स्नान किया है, जिससे उनकी सुन्दरियोंके मुखचन्द्र केशपाशरूप राहुके भयसे मुक्त होगये हैं। साङ्गरूपक अलङ्कार है ॥ ३२ ॥

निस्त्रिंशाहतवीरवैरिवनितालीलालकालीघना-
लिश्रेणीतनपादपद्मयुगलं जातं त्वदीयं यतः।
अद्यापि स्मरणं जहाति न मनः खड्गं त्वदीयं मनाग्
दृष्ट्वा श्रीहरिसिंह देवलपते! निष्काशितं लीलया ॥ ३३ ॥

अर्थ:—हे देवदुर्गेश्वर! खड्गमें मारे गये वीर वैरियोंकी नारियोंके विलासोचित काले बालरूप भ्रमरोंसे आपके दोनों चरणारविन्द आच्छादित हो गये थे—अर्थात् उन्होंने आपके चरणोंमें सिर झुकाये थे—उनका स्मरण आज भी विनोदकी इच्छासे म्यानसे बाहर निकाले हुए आपके खड्गको देखकर होजाता है। काले बालोंमें भ्रमरत्वका आरोप होनेसे रूपक है ॥ ३३ ॥

गङ्गानिर्मलमानसे! प्रतिदिनं विश्वेशपादाम्बुज-
द्वन्द्वासक्तिविरक्तिपूरविसरत्संसारचक्राम्बुधे!।
कर्तुं ते कवितामलं न कवयः श्रीबाणभट्टादयो
यत्कुक्षौ हरिसिंहरत्नमभवत्पृथ्वी कृतार्था यतः ॥ ३४ ॥

अर्थ:—हे राजमाता! गंगाके समान निर्मल अन्तःकरणमें प्रतिदिन भगवान् विश्वनाथके चरणारविन्दोंका अनुराग और सांसारिक वस्तुओंका वैराग्य ये दोनों निवास करते हैं इनसे आपने संसार समुद्रको पार कर लिया है। बाणभट्ट आदि कवि भी आपकी कीर्ति कविता बनानेमें समर्थ नहीं है, क्योंकि आपके गर्भसे पृथ्वीको कृतार्थ करनेवाले हरिसिंह जैसे रत्नका जन्म हुआ है ॥ ३४ ॥

विद्वत्कल्पतरुर्महोदधिरिवापारः कृपालुः परं
ज्ञाता पण्डिततोषणे मधुरवाग् धर्मप्रतिष्ठापकः।
नानावैदिकमन्त्रयन्त्रकरणैः प्रोत्साहितापच्चयः
पार्श्वे यस्य पुरोहितो विजयते कल्याणदासः स्वयम् ॥३५॥

अर्थः—श्रीमान महारावतजी साहबके पास जो पुरोहितजी है उनका नाम कल्याणदासजी हैं, आपकी बड़ी ऊँची योग्यता है, विद्वानोंमें आप कल्प द्रुम हैं, महासागरके समान आप अपार हैं, दयालु हैं, परमार्थ तत्त्वके ज्ञाता हैं, विद्वानोंकी प्रसन्नताके लिये बडा शिष्ट आचरण करते हैं, धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये आप प्रयत्नशील रहते हैं, अनेक वैदिक तन्त्र मन्त्रोंके प्रभावसे राज्यकी दैविक भौतिक सब प्रकारकी आपत्तियोंका निराकरण करते रहते हैं ॥ ३५ ॥

विद्यानामुदधिः पुराणपरधीर्हृद्यैककण्ठो रसी
गानेष्वन्यकथेतिहासचतुरो वेदान्तविख्यातधीः ।
हस्तन्यस्तसुपुस्तकः कलिमलध्वंसी सदा शृण्वतां
गोदाभट्टपुराणिको विजयते मोदादिविघ्नेशवत् ॥ ३६ ॥

अर्थः—महारावतजी साहिबके पास जो पुराण-कथावाचक हैं, उनका नाम गोदा भट्टजी हैं। आप भी विद्याके सागर हैं, पौराणिक ज्ञान आपका वडा ऊचा है, कण्ठका माधुर्य अद्वितीय है, गानेमें रसिक हैं, अन्यान्य दृष्टान्तोंके और हिस्ट्री के कहनेमें चतुर हैं, वेदान्तके धुरन्धर विद्वान हैं, पुस्तक सदा आप के हाथमें ही रहती है, श्रोताओंके हृदयमें कलिके प्रभावसे उत्पन्न हुई मलिनता-के मिटानेमें आप वडे पटु हैं, इन आठ गुणोंसे विभूषित आपकी एक मूर्ति भी मोद आदि आठ विनायकोंकी सी मालूम होती है। उपमा है ॥ ३६ ॥

विद्वाँस्तिष्ठति यस्य सुन्दरतनुः सर्वज्ञचूडामणि-
र्लोकानां गुणशंसकोऽतिचतुरो विद्यापगावारिधिः ।
वादी चञ्चलपण्डिताग्रभुजगप्रोद्यद्गरुत्मन्मणि-
र्धीरः सर्वकलाकलापकुशलः श्रीविश्वनाथाभिधः ॥३७॥

अर्थः—महारावतजी साहिबके सभा पण्डितजीका नाम विश्वनाथजी हैं, जो शरीरसे बड़े सुन्दर, सब विद्वानोंमें शिरोमणि, लोगोंके गुणोंका स्वागत करने वाले, अत्यन्त चतुर, विद्यासागर, चपल पण्डितरूप द्विजिह्वोंके लिये गारुड मणि, धीर और सर्व कलाओंमें कुशल हैं। 'पण्डित द्विजिह्वोंके लिये गारुड मणि' यह 'रूपक' है ॥ ३७ ॥

शेषाशेषविचारसागरगता गङ्गेव यस्यास्ति धी-
र्न्याये न्यायविदग्रणीर्बहुविधं वैशेषिकं वेत्ति यः।
मीमांसानलिनीदिवस्पतिरसौ वेदान्तविद्यागुरुः
साहित्याम्बुजषट्पदो विजयते श्रीविश्वनाथो बुधः॥ ३८॥

अर्थः—उक्त पण्डितजीकी बुद्धि पतञ्जलिके विचारसागरसे सङ्गम करने वाली गङ्गा है, न्याय शास्त्रमें (लौजिकमें) आपका पद सब नैयायिकोंकी अपेक्षा ऊँचा है, कणादमुनिकृत वैशेषिक शास्त्रको (लौजिकके एक पार्टको) आप बहुत अच्छा जानते हैं, पूर्वमीमांसाशास्त्ररूपा (याज्ञिक वेदभागका अर्थ विचार) कमलिनीके विकास करनेमें आप सूर्य हैं, वेदान्त-विद्यामें आप वागीश हैं, साहित्य सरोजके आप भ्रमर हैं। गङ्गा सूर्य और भ्रमरके रूपका आरोप होनेसे 'रूपक' अलङ्कार है॥ ३८॥

तर्कव्याकरणादिकर्कशमतिः साहित्यसौरभ्यवा-
न्मीमांसार्णवपारगः सुकविता सीमन्तिनीवल्लभः।
नानानाटकभव्यकाव्यरचनातत्तत्कलाकोविदो
दृष्टोऽद्यैव मया विशिष्टविभवः 'श्रीविश्वनाथो' बुधः॥३९॥

अर्थः—न्याय और व्याकरणके जटिलसे जटिल विषयमें आपकी बुद्धि प्रविष्ट होजाती है, साहित्य-सरोजके सौरभसे आप सुरभित हैं, पूर्वोत्तर-मीमांसा (वेदविचार) समुद्रके आप पारदर्शी हैं, मनोहारिणी कविता-कामिनीके आप प्रियतम हैं, अनेक नाटक और सुन्दर २ काव्योंकी रचनाओंमें जो वे २ कलाएं अपेक्षित है, उनमें आप विद्वान हैं, ऐसे उन्नतम वैदुष्य-वैभव वाले पण्डित विश्वनाथजी के मैंने आज-ही दर्शन किये हैं॥ ३९॥

नो चेतश्चलितं कदापि कलुषो जातो निजे नो विभौ
नित्यं पूर्णमना धनेन धनिनामग्रेसरो राजते।
कोष्ठागारविनिर्मितो विजयते 'केशू' निजाख्यां गतो
भर्गस्येव धनाधिपस्त्रिजगतीनाथस्य तस्यान्तिकम्॥४०॥

अर्थः—महारावतजी साहिबके खजानचीका नाम 'केशू' उर्फ केशवजी है,

आप हृदयके बड़े दृढ हैं, आपका अपने स्वामी महारावतजी साहिबके विषयमें कभी भी हृदय मलिन नहीं हुआ। सम्पत्तिसे आपका मन भरा हुआ है, आप सब लक्ष्मीपात्रोंमें अग्रणी हैं, जैसे त्रैलोक्यनाथ भगवान् शङ्करके कुबेर खजानची हैं, इस तरह महारावतजी साहिबके पास आप खजानची हैं। यहां 'खजानची' साहिब को कुबेरकी उपमा देनेसे 'उपमा अलङ्कार है ॥ ४० ॥

भक्तः सत्यपरायणः परमनस्तत्त्वैकचोरः क्षमी
विद्यास्वेव चतुर्षु धीरधिषणो रूढिं परामागतः।
'वर्पासाह' इति प्रभोः सुचतुरो मन्त्री परं राजते
येनाभाति भृशं दिनैरगणितैरुच्छ्वासितेवावनी ॥ ४१ ॥

अर्थ:—महारावतजी साहिबके मन्त्री पद पर (हुमडजातीय) वर्पा साह हैं, जो राजभक्त, सत्यपक्षपाती, दूसरोंके मनको हरण करनेवाले चारों प्रकारकी राजनीति में परम निपुण धीर और व्यवहार-चतुर हैं, जिनके मन्त्री होनेसे यह काठलकी भूमि बहुत समयसे अत्यन्त प्रसन्नसी मालूम होती है ॥ ४१ ॥

हस्ते चञ्चलचामरौ सुललितौ कन्दर्पकोटिप्रभौ
नित्यं योधकलू विरेजतुरहो पार्श्वस्थितौ तावुभौ।
कामार्थाविव धर्मगौ सुमिलितौ श्रीदेवलेशप्रभोः
सङ्गीतोत्सवसुन्दराङ्गणसभासिंहासनस्थायिनः ॥ ४२ ॥

अर्थ:—श्रीमान् महारावतजी साहिब, गाना सुननेके लिये जब सभामें सिंहासन पर विराजमान होते हैं, तब आपके दाईं और बाईं दोनों ओर दो चामर डुलानेवाले खड़े रहते हैं, जिनमें एकका नाम 'योध' (उर्फ जोधा) और दूसरे-का नाम कलू है, ये दोनों बहुत सुन्दर हैं, कोटि कामदेवोंके समान इनके शरीरकी शोभा है, जैसे धर्मके साथ काम और अर्थ हों, इस तरह महारावतजी साहिबके साथ इनकी शोभा मालूम होती है। उपमा है ॥ ४२ ॥

उद्यन्निर्मलमेदपाटविलसद्वंशैकचूडामणि-
श्रीमन्माधवभट्टसूरितनयो दिक्चक्रविख्यातधीः।
गङ्गारामसहाकविर्यरचत्काव्यं सुधासोदरं
तस्मिन्श्रीहरिभूषणे सुचरिते सर्गोऽगमादष्टमः ॥ ४३ ॥

इति श्रीहरिभूषणे महाकाव्ये कविश्रीगङ्गारामकृतौ महाराजवर्णनो नामाष्टमः सर्गः ।

अर्थः—अर्थ पूर्वोक्त है ॥ ४३ ॥

प्रथम सर्गके समान इस संपूर्ण सर्गमें शार्दूलविक्रीडित छन्द हैं ।

यह कवि गङ्गारामकृत श्रीहरिभूषण महाकाव्यमें अष्टम सर्ग पूर्ण हुआ ।

नवमः सर्गः ।

जय जय जितशस्त्रप्रशस्तिप्रभूतारिभूपालमालास्खलन्मौलि-मल्लीमतल्लीसमुत्फुल्लमालोल्लसद्भृङ्गमत्ताङ्गनापुञ्जगुञ्जारवोज्जृम्भ-दङ्घ्रिद्वयाम्भोजचञ्चन्नखप्रेङ्खदंशुच्छटाकेसरासङ्गरक्तप्रभाभरभ्राज-दभ्यर्णकर्णाटलाटोत्कलद्राविडाभीरगम्भीरधारूरतैलङ्गकेकाण-कङ्काण-नेपाल-नेपाट-बंगाल-सौवीर-काञ्ची-मदाभोट-नीसाड-राजीज-माजीज-याजूज-माजूज-गान्धर्व-बोलक्ष-कावन्त्य-काशी-कुरुक्षेत्र-पञ्जाब-अम्बाल-पञ्चालहप्सोरकीरार्बुदासेरकैकेयकाश्मीर लङ्का-गुआसीर-बग्दाद-मेहूणजुहूण-गङ्गा-महाराष्ट्र-सौराष्ट्र-विश्व-म्भरानाथचञ्चत्किरीटापहारिन् महाराजराज प्रभो देवलेश प्रसीद ॥ १ ॥

इन सर्गमें गद्य और पद्य दोनों है, इसलिये चम्पूके समान है। प्रारम्भमें ससमास वृत्तगन्धि तीन गद्य है, जिनमे सर्वत्र भुजङ्गप्रयात छन्दके चरण है। इन गद्योमे बड़े २ समास हैं और संस्कृत भी प्रौढ है, परन्तु अशुद्धियां बहुत है, इसलिये इनका स्थूल भावानुवाद ही यहां लिखा जाता है। शेष पद्योका अनुवाद पूर्व सर्गोंके समान है ।

भावार्थः—हे महाराजाओंके भी राजा देवदुर्गेश्वर ! अनेक शत्रु नरेशों-ने हार कर आपके चरणोपर सिर झुकाया है और तैलङ्ग, कोकण, नेपाल, पञ्जाब आदि अनेक दूर २ देशके राजाओंके राजमुकुटोंको आपने अपहरण कर लिया है, आपकी जय हो, आप प्रसन्न हो ॥ १ ॥

अवति भवति चन्द्रचञ्चत्करोत्तुङ्गमङ्गोदधिस्वच्छचित्तानि वित्तानि वित्ताधिपाधिक्यसंपत्कराणि क्षितावेव।

आजानुबाहो सदोदार ! नैकताऽनूनचित्तोल्लसन्मञ्जुपीयूषधाराऽभिषिक्तोल्लसद्भिक्षुलक्षक्षणोत्क्षिप्तगङ्गानरङ्गोदयोद्व्ययपद्यात्मकस्तोत्रविस्तीर्णगाम्भीर्यधैर्यादितत्तद्गुणग्रामकिर्मीरितापारसप्तार्णवापूर्णकीर्ते जगद्वन्द्यमूर्ते जगन्नाथमूर्ते ! तव निपतति यत्र दृष्टिः सुधावृष्टिरुद्यत्सरोजायमानानि केषां न शीर्षाणि नम्राणि कम्राणि पादोपकण्ठे।

दिवानक्तमभ्युद्यद्यशःस्तोमसोमप्रकाशेन निष्काशितारातिकीर्ते सदानन्दमूर्ते ! खुरासान-कन्धार-इष्पान-सिन्धी-बदक्सान-मक्का मुलक्का-तिबत्ता-बुखारा-फिरङ्गान-मावर्त-ईराक-काश्मीर-मक्की महाचीनचीनापरे मेरुपादाधिवासास्त्रिपादा हयास्या मृगास्यास्तथैवोर्ध्वकर्णा भवन्त न के के नमन्ति ॥ २ ॥

भावार्थ —पृथ्वी पर आपके शासन करने पर द्रव्यवृद्धि ऐसी हुई है कि कुबेरकी समृद्धिसे भी अधिक समृद्धि मालूम होती है।

हे घुटने पर्यन्त दीर्घ बाहु वाले नित्य उदार राजेन्द्र ! आपकी दानसुधासे प्लावित हुए लाखों भिक्षुकोंके द्वारा स्तुतिमें गाई गई आपकी गुणमयी कीर्तिसे सातों समुद्र पूरित हो गये हैं और आपकी सुधावृष्टि तुल्य दृष्टि जिधर पड़ती है, उधर ही कमलोंके समान सिर आपके चरणोंमें सभीके झुक जाते हैं।

दिन रात उदयकी अवस्थामें रहने वाले (अपने) यशश्चन्द्रसे शत्रुओंकी कीर्तिको हटानेवाले नित्यानन्दमूर्ते हे राजेन्द्र ! खुरासान, चीन, कन्धार, सिन्ध, आदि देशोंके रहने वाले एवं यक्ष राक्षस आदि उपदेव सभी आपको नमते हैं॥२॥

अवति भवति भूतल भासुरे भालयो भान्ति भूमितले, भूमिदेवा भय नो भजन्ते, भवानीश भर्गस्फुरत्पदाम्भोजयुग्मोल्लसद्भावनाभाञ्जितोद्दामभीमस भवोऽग्य भव, श्रीमद्भाललावण्यशोभाभराभाभिरभ्यागता भालदारिद्र्यभङ्गोल्लसत्कीर्तिर्विबुधाब्धिवेलानतिश्लाविताशेषलोकप्रमत्तुङ्गचञ्चत्तुरङ्गावलीमेघमुक्ताभ्रम

तुङ्गवाजिखुरक्षुण्णभूचन्द्रकाकथ्यमानस्वकीयेश तुद्रासमुद्रावधि-
स्फीतहासक्षणोन्नतिचञ्चच्छरच्चन्द्रदानव्रताधिकृतास्वप्र ! भूमीरु-
ह्योद्दामकीर्ते विभो देवलेश प्रसीद ॥ ३ ॥

भावार्थः—आपके शासन-कालमें बड़े २ सुन्दर हाथी शोभा पा रहे हैं; ब्राह्मण लोग निर्भय हैं, इत्यादि । हे दुर्गेश्वर ! आप प्रसन्न हों ॥ ३ ॥

तदीयोऽभवच्चण्डचण्डांशुरोचिः कुमारः कुमाराग्रधामारि मारः ।
द्विपत्तूलपुञ्जोल्लसज्ज्वानवेदाः समुद्यन्निवासौ प्रतापप्रदीपः ॥ ४ ॥

अर्थः—मध्याह्न कालके सूर्यके समान कान्तिमान् स्वामी कार्तिकेयके समान उग्र तेज वाले, शत्रुरूप रूईके ढेरके लिये अग्नि, शत्रुओंकी संपत्तिका अप-हरण करने वाले और उदित होते हुए प्रताप-दीपकके समान उक्त महारावलजी साहिब के-महाराज-कुमार हुए ॥ ४ ॥

मुदाऽऽदाय चापं सखीभिः समन्तात्परीतः शरव्यं शरेणाजघान ।
यदा योगिनामप्यलक्ष्यं कुमारो बिडौजाश्चुकोपाशु दृष्ट्वा जयन्तम्
॥ ५ ॥

अर्थः—जब महाराज-कुमार साहिब ने सब मित्रोंके बीचमें धनुष लेकर तीरसे योगी भी न देख सके,ऐसा निशाना मारा तब इन्द्र जयन्त पर कुपित हुआ भाव यह कि जयन्तकी योग्यता ऐसी नहीं थी, इसलिये इन्द्रको क्रोध आया ॥५॥

तुराङ्गाधिरूढ कुराङ्गायताक्षीमनश्चोर एपश्चलच्चामरश्रीः ।
स्फुरत्कर्णमुक्तोल्लसद्गल्लशोभः परं राजते राजसूनुः कुमारः ॥ ६ ॥

अर्थः—महाराज कुमार साहिबके दोनों कानोंमें चमकीले मोती पहिने हुए थे, जिनसे कपोलोंकी बड़ी सुन्दर शोभा थी । दोनों ओर आपके चॅवर ढुलते थे, इस तरह घोड़े पर बैठ कर बाहर निकलते थे, उस समय मृग-नयनाओंके मनको हर लेते थे ॥ ६ ॥

परं गीयमानः कुरङ्गीक्षणाभि सदा वल्लकीवादनप्रक्रियायाम् ।
यमालोक्य लोकोल्लसच्चित्तवृत्तिः कथं मन्मथेनोपमेये कुमारः॥७॥

अर्थः—मृगोंके समान नयन वाली सुन्दरियाँ वीनके साथ २ महाराज-कुमारके गुणोंको गाती हैं, महाराज कुमार साहिबके दर्शनसे लोगोंके चित्त बहुत आनन्दित होते हैं, आपको कामदेवकी उपमा कैसे न दी जावे ॥ ७ ॥

वयोबाल एषो न बुद्ध्या प्रताप',

अर्थ—यह प्रताप कुमार अवस्थासे बालक है, परन्तु बुद्धिसे नहीं है ॥

अपूर्ण है।

इति श्रीमहाकविगङ्गारामकृतौ श्री 'हरिभूषण'-महाकाव्ये महाराजकुमार-वर्णनो नाम नवम सर्ग ।

इति श्रीहरिभूषणमहाकाव्ये कृष्णदासात्मज-जगन्नाथवेदान्तशास्त्रिणा निर्मिता हिन्दीमयी व्याख्या पूर्णा ।

शीरस्तु ।